प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली।

तीसरी बार : १९४७
मूल्य
सवा रुपया

मुद्रक
अमरचंद्र
राजहंस प्रेस,
दिल्ली २३-४७।

: १ :

मेरा बपतिस्मा और पालन-पोषण ईसाई मतमें हुआ था। मुझे बाल्यावस्थामें तथा किशोर व युवावस्थामें इसी मतके धार्मिक विश्वासोंकी शिक्षा-दीक्षा दी गई थी। परंतु जब मैं १८ सालकी उम्रमें यूनीवर्सिटीसे निकला तो जो बातें मुझे सिखाई-पढ़ाई गई थीं उनमेंसे किसीपर मेरा विश्वास नहीं रह गया था।

जहांतक मुझे याद पड़ता है कह सकता हूं कि मुझे जो कुछ सिखाया-पढ़ाया गया था और मेरे इर्द-गिर्दके बड़े-बूढ़े लोग जिन बातों-को मानते थे उनपर मेरा पक्का विश्वास कभी नहीं था, फिर भी मैं उन-पर भरोसा करता था; परंतु मेरा यह भरोसा भी बड़ा डावांडोल था।

मुझे याद है कि जब मैं पूरे ग्यारह सालका भी न था, तब स्कूलका ब्लाडीमीर मिलयटिन नामका छात्र (जिसकी बहुत दिन हुए मृत्यु हो गई) एक रविवारको हमारे यहां आया और उसने एक सबसे ताजी नवीन बात हमें सुनाई, जिसकी खोज उसके स्कूलमें हुई थी। खोज यह हुई थी कि ईश्वर नामकी कोई चीज नहीं है और उसके बारेमें हम लोगों-को जो कुछ सिखाया जाता है वह सब काल्पनिक है (यह घटना १८३८ ई० की है)। मुझे याद है कि मेरे बड़े भाइयोंने इस खबरमें कितनी दिलचस्पी ली थी। उन्होंने मुझे भी अपनी मंत्रणामें बुलाया। हम सब-के-सब खूब उत्तेजित हो गये थे और हमने यह स्वीकार किया कि यब खबर बड़ी मनोरंजक है और बिलकुल मुमकिन है।

मुझे यह भी याद है कि जब मेरे बड़े भाई दयित्री, जो उस वक्त यूनीवर्सिटीमें पढ़ रहे थे, एकाएक अपने स्वाभाविक जोश-खरोशके साथ

धर्म-मार्गपर झुक पड़े, गिर्जेकी सब प्रार्थनाओं एवं उपदेशोंमें हिस्सा लेने लगे और उपवास करने तथा पवित्र एवं सदाचार पूर्ण जीवन बिताने लगे। तब हम सब—हमारे बड़े-बूढ़ेतक—बराबर उनकी हंसी उड़ाते और न मालूम किस वजहसे उनको 'नूह' कहते थे। मुझे याद है कि कजान यूनिवर्सिटीके प्रबंधक पुजिन-मुश्किनने एक बार हमें अपने घर नृत्यके लिए न्यौता दिया। हमारे भाई उनका न्यौता मंजूर नहीं कर रहे थे, तब उन्होंने व्यंगसे यह तर्क करके उनको किसी तरह राजी किया कि डेविड-तक आर्कके सामने नाचे थे। मैं अपने बड़े-बूढ़ोंके इन मजाकोंमें रस लेता था और इनसे मैंने यह नतीजा निकाला था कि यद्यपि प्रश्नोत्तरपाठ-(धर्म-पुस्तक) की जानकारी और गिर्जेमें जाना जरूरी है, पर किसीको इन बातों को ज्यादा महत्त्व नहीं देना चाहिए। मुझे यह भी याद है कि लड़कपनमें मैंने वाल्टेयरकी रचनाएं पढ़ी थीं और उनके धर्मका उपहास उड़ानेसे मुझे दुःख तो क्या होता, उलटे मेरा बहुत मनोरंजन होता था।

धर्मपर मेरी अनास्था ठीक उसी प्रकार हुई जिस प्रकार हमारे समान शिक्षा पाये हुए लोगोंमें अक्सर हो जाती है। मैं समझता हूँ कि अधिकतर यह बात इस तरह होती है। और लोगोंकी तरह कोई एक आदमी ऐसे उसूलोंके आधार पर जिंदगी बसर करता है जिनका धार्मिक सिद्धांतोंसे न सिर्फ कोई ताल्लुक नहीं होता बल्कि आमतौरसे वे उनके विरोधी होते हैं। धार्मिक सिद्धांतोंका जीवनपर कोई असर नहीं रहता। न तो दूसरोंके प्रति उनके मुताबिक आचरण किया जाता है और न अपनी जिंदगीमें आदमी उनपर कोई ध्यान देता है। धार्मिक सिद्धांत जिंदगीसे अलग और उससे दूर माने जाते हैं। अगर उनका कहीं दर्शन होता है तो वे जिंदगीसे अलग एक बाहरी चीजके रूपमें दिखाई पड़ते हैं।

आजकलकी भांति उस समय भी किसीके जीवन अथवा आचरण-से यह फैसला करना कि वह आस्तिक है या नास्तिक असंभव था और

अब भी है। अगर अपनेको खुले-आम कट्टर धार्मिक कहनेवालेमें और अपनेको विधर्मी कहनेवालेमें कोई फर्क है तो वह धार्मिकोंके पक्षमें नहीं है। इस वक्तकी तरह उस समय भी खुले-आम अपनी धार्मिकता का एलान करनेवाले ज्यादातर उन्हीं आदमियोंमें मिलते थे, जो हीन-बुद्धि और बे-रहम होते थे, पर अपनेको बहुत ज्यादा वकत देते थे। योग्यता, सच्चाई, विश्वसनीयता शील, स्वभाव और सदाचरण अक्सर नास्तिकोंमें ही पाया जाता था।

स्कूलोंमें धर्म-पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं और वहांसे विद्यार्थियोंको गिर्जे भेजा जाता है। सरकारी अफसरोंको 'कम्यूनियन' (प्रभु ईसाके स्मरणार्थ भोज जिसमें ध्यान करके उनके साथ संपर्क स्थापित किया जाता है) प्राप्त करनेका प्रमाण-पत्र पेश करना पड़ता है। पर हमारी श्रेणी-का कोई आदमी, जिसने अपनी शिक्षा पूरी कर ली है और जो सरकारी नौकरीमें नहीं है, आज भी १०-२० साल बिता दे सकता है और उसे एक बार भी याद नहीं आयेगा कि वह ईसाइयोंके बीच रह रहा है और खुद कट्टर ईसाई मतका सदस्य समझा जाता है। उस जमानेमें तो यह बात और सरल थी।

इस तरह पहले भी यही बात होती थी और अब भी होती है कि धार्मिक सिद्धान्त लोगोंकी देखा-देखी या बाहरी दबावसे मान लिये जाते हैं और जिंदगीका ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होनेपर, जो उसके विपरीत होता है, वे बिखरने लगते हैं। और मजा यह है कि बहुधा आदमी इस कल्पनामें रहता है कि बचपनमें उसे धार्मिक सिद्धान्त बताये गये थे वह उनका पालन कर रहा है, जबकि उसके आचरणमें उनका नाम-निशान भी बाकी नहीं होता।

'एस' नामके एक होशियार और सत्यवादी आदमीने एक बार मुझे अपनी कहानी सुनाई थी कि कैसे वह नास्तिक बन गया। जब वह २६ सालका था, तबकी बात है। वह शिकार खेलने गया। रात-के वक्त एक जगह पड़ाव डाला गया। बचपनसे चली आई आदतकी

वजहसे उसने शामके वक्त झुककर प्रार्थना शुरू कर दी । इस शिकार में उसका बड़ा भाई भी साथ था । वह घासपर लेटा हुआ अपने छोटे भाईके इस कामको देख रहा था । जब 'एस' प्रार्थना खत्म कर चुका और रातमें आराम करनेकी तैयारी करने लगा तब उसके बड़े भाईने कहा—'अच्छा ! तुम अभीतक यह सब करते जाते हो ?'

उन्होंने एक-दूसरेसे और कुछ भी नहीं कहा । लेकिन उस दिनसे 'एस'ने प्रार्थना करना या गिर्जेमें जाना छोड़ दिया । और अब उसे प्रार्थना छोड़े, उपासना किये या गिर्जेमें गये तीस साल हो चुके हैं । ऐसा उसने इसलिए नहीं किया कि वह अपने भाईके विश्वासों या विचारोंको समझकर उन्हें अपना चुका था या खुद अपनी आत्मामें कुछ फैसला कर चुका था । ऐसा उसने सिर्फ इसलिए किया कि उसके भाईके कहे हुए शब्दने उस दीवारको धक्का देनेवाली उंगलीका काम किया, जो खुद अपने बोझसे गिरनेको हो रही हो । भाई-के शब्द ने सिर्फ इतनी-सी बात जाहिर कर दी कि वह समझता था धर्म-निष्ठा कायम है परंतु वास्तवमें बहुत दिनों पहलेसे उसका सफाया हो चुका था, इसलिए प्रार्थनाके वक्त कुछ शब्दोंका दोहराना, क्रासके चिह्न बनाना या आराधनाकेलिए घुटने मोड़कर बैठना सब व्यर्थ था । जब उसे इन कृत्योंकी निरर्थकताका अनुभव हुआ तब वह उन्हें जारी नहीं रख सका ।

ज्यादातर आदमियोंके साथ इसी प्रकार होता रहा है और होता है । मैं उन लोगोंकी बात कह रहा हूं जिन्होंने हमारे दर्जेकी तालीम पाई है और जो अपने प्रति ईमानदार हैं । मैं उन लोगोंकी बात नहीं कह रहा हूं जो दुनियवी इरादों और आकांक्षाओंको पूरा करनेकेलिए धर्माचरण को साधन बनाते हैं । (ऐसे आदमी सबसे बड़े नास्तिक हैं; क्योंकि अगर उनकेलिए धर्म-निष्ठा सांसारिक कामनाओंकी पूर्ति करने-का उपाय है तो फिर वह वास्तवमें धर्म-निष्ठा नहीं है ।) हमारी तरहकी शिक्षा पाये हुए इन लोगोंकी स्थिति यह है कि ज्ञान और जीवनके

प्रकाशने एक बनावटी इमारतको ढहा दिया है और उन्होंने या तो यह बात देख ली है और उस जगहकी सफाई कर दी है या फिर अभीतक इधर उनका ध्यान ही नहीं गया है।

दूसरोंकी तरह मेरी भी गति हुई, बचपनसे सिखाये गये धार्मिक सिद्धांत लुप्त हो गये। लेकिन इतना फर्क जरूर रहा कि १५ सालकी उम्रमें मैंने दार्शनिक ग्रंथोंको पढ़ना शुरू कर दिया जिससे धर्म-सिद्धांतोंका त्याग छोटी उम्रमें ही सचेत मनसे हुआ। सोलह सालका होते ही मैंने स्वेच्छासे प्रार्थना करनी बंद कर दी। मेरा चर्च (गिर्जाघर) जाना और उपवास करना छूट गया। जो-कुछ मुझे बचपनमें सिखाया गया था उसमें मेरा विश्वास नहीं रह गया था; लेकिन कोई-न-कोई चीज ऐसी जरूर थी जिसमें मैं विश्वास करता था। वह कौन-सी चीज है जिसमें मेरा विश्वास था, यह उस समय मैं नहीं बता सकता था। मैं ईश्वरमें विश्वास करता था या यों कह सकते हैं कि ईश्वरके अस्तित्वसे इन्कार नहीं करता था, पर उस वक्त यह बताना मेरेलिए असंभव था कि वह ईश्वर किस तरहका है। मैं ईसा और उनकी शिक्षाओंको भी अस्वीकार नहीं करता था; लेकिन उनकी शिक्षाएं क्या हैं, यह मैं नहीं कह सकता था।

जब मैं उस जमानेकी तरफ नजर दौड़ाता हूं तो अब मुझे साफ-साफ दिखाई पड़ता है कि मेरी निष्ठा—मेरी एकमात्र वास्तविक निष्ठा—जो यदि पाशविक प्रवृत्तियोंको छोड़ दूं तो मेरे जीवनको गति देती थी। मेरा यह विश्वास था कि मुझे अपनेको पूर्ण बनाना चाहिए। लेकिन इस पूर्णताके मानी क्या हैं या उसका प्रयोजन क्या है; इसे मैं नहीं बता सकता था। मैंने मानसिक दृष्टिसे अपनेको पूर्ण बनानेकी कोशिश की—मैंने हर एक चीजका, जिसका अध्ययन कर सकता था, किया। मैंने अपनी संकल्प-शक्ति पूर्ण करनेकी कोशिश की; मैंने ऐसे नियम बनाये जिनका पालन करने की मैं कोशिश करता था; मैंने शारीरिक दृष्टिसे भी अपनेको पूर्ण किया—हर तरहकी कसरतोंसे अपनी ताकत

बढ़ाने और शरीरमें फुर्ती लानेकी कोशिश की और सब तरहके सुख-साधनोंके त्यागसे अपनी सहन-शक्ति और धीरज बढ़ानेका यत्न किया। मैं यह सब पूर्णताकी खोजमें कर रहा था। निश्चय ही इन सबकी शुरुआत नैतिक पूर्णतासे हुई, पर जल्द ही उसका स्थान सब तरहकी सामान्य परिपूर्णताने ले लिया, अर्थात् मेरे अंदर यह इच्छा पैदा हुई कि मैं न सिर्फ अपनी और ईश्वरकी दृष्टिमें, बल्कि दूसरे लोगोंकी दृष्टिमें भी अच्छा बनूं। और बहुत जल्द यह चेष्टा फिर दूसरोंसे ज्यादा शक्तिशाली बननेकी इच्छामें बदल गई और मनमें यह बात पैदा हुई कि मैं दूसरोंसे अधिक प्रसिद्ध, अधिक महत्त्वपूर्ण तथा अधिक धनी बनूं।

: २ :

किसी दिन मैं अपनी जवानीके दस सालोंके जीवनकी संवेदनाशील और शिक्षा-प्रद कहानी बयान करूंगा। मेरा खयाल है कि और भी बहुतेरे आदमियोंको ऐसा ही अनुभव हुआ होगा। अपनी संपूर्ण आत्मासे मैं अच्छा बनना चाहता था; लेकिन जब मैंने अच्छा बननेकी कोशिश शुरू की तो मैं जवान था, वासनाओंका दास था और अकेला था—बिलकुल अकेला। जब-जब मैंने नैतिक रूपसे भला बननेकी अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट की, तब-तब हर बार मेरा उपहास किया गया और दिल्लगी उड़ाई गई; लेकिन ज्योंही मैं तुच्छ वासनाओंके आगे सिर झुका देता था, मेरी तारीफ की जाती और मुझे बढ़ावा दिया जाता था।

आकांक्षा, शक्तिका प्रेम, लोभ, कामुकता, लंपटता, घमंड, क्रोध और प्रतिहिंसा सबकी इज्जत की जाती थी।

इन वासनाओंके आगे सिर झुकाकर मैं वयस्क लोगोंकी श्रेणीमें जा बैठा और मैंने अनुभव किया कि वे मेरा समर्थन करते हैं। मेरी बुआ, जिनके साथ मैं रहता था, खुद बहुत ही शुद्ध और ऊंचे चरित्रकी थीं, लेकिन वह भी मुझसे सदा कहा करती थीं कि उनकी प्रबल इच्छा है कि किसी विवाहिता स्त्रीसे मेरा संबंध हो जाय। 'जवान आदमीको बनानेमें कोई चीज उतना काम नहीं करती जितना एक कुलीन महिला-से घनिष्ठता काम करती है।' मेरे लिए दूसरा सुख वह यह चाहती थीं कि मैं एडीकांग (किसी सेनापति या प्रतिष्ठित पदाधिकारीका शरीर-रक्षक), और संभव हो तो सम्राट्का एडीकांग, बनूं। पर सबसे बड़ा सुख तो उन्हें इस बातसे होगा कि मैं किसी अत्यंत धनी कन्यासे विवाह कर लूं जिससे मेरे पास दासोंकी ज्यादा-से-ज्यादा संख्या हो जाय।

बिना त्रास; घृणा और हृदय-वेदनाके मैं उन सालोंका खयाल नहीं कर सकता। मैंने लड़ाईमें आदमियोंका वध किया, मैंने लोगोंका बध करनेकेलिए उनको द्वंद्व-युद्धमें ललकारा; मैंने जुआ खेला, उसमें हारा; मैंने किसानोंसे बेगार ली और उन्हें सजाएं दीं; बुरे आचरण किये और लोगोंको धोखा दिया। मिथ्या भाषण, लोगोंको लूटना, हर तरह-का व्यभिचार, मद्य-पान, हिंसा, खून—मतलब कोई ऐसा अपराध नहीं था जिसे मैंने न किया हो, और मजा यह कि इन सब कामोंकेलिए लोग मेरे आचरणकी तारीफ करते थे और मेरे जमानेके आदमियोंने मुझे और लोगोंके मुकाबलेमें सदाचारी व्यक्ति समझा और समझते हैं।

दस सालोंतक मेरा यही जीवन था।

इसी समय मैंने अहंकार, लोभ और अभिमानवश लिखना शुरू किया। मैंने अपनी रचनाओंमें वही किया जो मैं अपनी जिंदगी-में करता था। प्रसिद्धि और धन प्राप्त करनेकेलिए मैं लिखता था और इसकेलिए अच्छाईको छिपाना और बुराईका प्रदर्शन करना जरूरी था। मैंने यही किया। न जाने कितनी बार मैंने अपनी रचनाओंमें उदासीनता अथवा उपहासके जामेमें, अपनी भलाईकी तरफ जानेवाली

उन प्रेरणाओंको छिपाने और दबानेकी कोशिश की, जिनसे मेरे जीवनकी सार्थकता थी। मैं इसमें सफल हुआ और इसकेलिए मेरी प्रशंसा की गई।

छब्बीस[1] सालकी उम्रमें, मैं लड़ाईके बाद पीटर्सबर्ग लौटा और लेखकोंसे मिला। उन्होंने मुझे अपनाया, स्वागत किया और मेरी चापलूसी की। और इसके पहले कि मैं अपने चारों ओर दृष्टि डालता, मैंने उन लेखकोंके जीवन-संबंधी विचार ग्रहण कर लिये थे, जिनके बीच मैं आया था। इन विचारोंने मेरे भला बननेकी पूर्वकी सारी प्रेरणाओंका लोप कर दिया। इन विचारोंने ऐसा सिद्धांत प्रस्तुत कर दिया जिससे मेरी जिंदगीकी लंपटता और विषयासक्ति सही साबित हो गई।

मेरे इन साथी लेखकोंके जीवन-संबंधी विचार ये थे: सामान्य जीवन विकसित होता रहता है और इस विकासमें हम विचार-प्रधान आदमी खास हिस्सा लेते हैं; फिर विचार-प्रधान आदमियोंमें भी हमारा—कलाकारों और कवियोंका—सबसे अधिक प्रभाव होता है हमारा धंधा मनुष्य-जातिको शिक्षा देना है। और कहीं यह सीधा-सादा सवाल किसीके दिलमें न उठ खड़ा हो कि मैं जानता क्या हूं और शिक्षा किस बातकी दे सकता हूं, इसलिए इस सिद्धांतमें यह कहा गया था कि इसका जानना जरूरी नहीं है; कलाकार और कवि अप्रकट रूपमें ही शिक्षा देते हैं। मैं एक सराहनीय कलाकार और कवि समझा गया था, इसलिये मेरेलिए इस सिद्धांतको मान लेना स्वाभाविक था। मैं, कलाकार और कवि, लिखता तथा शिक्षा देता था, परंतु स्वयं नहीं जानता था कि मैं क्या लिख रहा हूं और क्या शिक्षा दे रहा हूं। और इसकेलिए मुझे धन मिलता था, मुझे अच्छा भोजन, मकान, स्त्री और समाज सब-कुछ मिला हुआ था; मेरा यश भी फैला था जिससे यह मालूम पड़ता था कि जो कुछ मैं सिखा रहा हूँ वह बहुत अच्छी चीज है।

[1] कुछ स्मृति-दोष मालूम होता है। वह सत्ताईस वर्षके थे। —सं०

कविताके और जीवनके विकासके संबंधमें इस तरहका विश्वास एक प्रकारसे धर्म था और मैं उसका पुरोहित। उसका पुरोहित होना बड़ा सुखद और लाभदायक था। मैं बहुत दिनोंतक इस धर्मको, उसके औचित्यमें किसी तरहका संदेह किये बिना, मानता रहा। किंतु इस जीवनके दूसरे और विशेष रीतिसे तीसरे सालमें मैं इस धर्मकी निर्भ्रान्ततापर संदेह करने लगा और मैंने उसकी जांच करनी भी शुरू कर दी। इस संदेहका पहला कारण यह था कि मैंने देखा कि इस धर्मके सब पुरोहित आपसमें एक राय नहीं रखते। कुछ कहते थे: हम सबसे अच्छे और उपयोगी शिक्षक हैं; हम वही शिक्षा देते हैं जिसकी आवश्यकता है। दूसरे गलत शिक्षा देते हैं। दूसरे कहते: नहीं असली शिक्षक हम हैं; तुम गलत शिक्षा देते हो। और वे एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते, गाली-गलौज करते और धोखा देते थे। हममेंसे बहुतेरे ऐसे भी थे जिनको इसकी परवा न थी कि कौन सही है और कौन गलत; वे सिर्फ हमारी इन कारंवाइयोंके जरिये अपना मतलब साधने में लगे हुए थे। इन सब बातोंकी वजहसे मैं भी इस धर्मकी सचाईमें संदेह करनेको विवश हो गया।

इसके अतिरिक्त लेखकोंके धर्म-मतमें इस तरह संदेह करना शुरू करनेके बाद मैं उसके पुरोहितोंपर भी ज्यादा बारीक नजर रखने लगा और मुझे पक्का निश्चास हो गया कि इस धर्मके करीब-करीब सब पुरोहित, लेखकगण असदाचारी और अधिकतर दुश्चरित्र एवं अयोग्य हैं तथा उन लोगोंसे भी नीचे हैं जिनसे मैं अपने पहलेके भ्रष्ट और सैनिक जीवनमें मिला था। वे आत्म-विश्वासी एवं आत्म-संतुष्ट थे और ऐसे वे ही आदमी हो सकते हैं जो बिलकुल पवित्र हों या फिर जो जानते भी न हों कि पवित्रता किस चिड़िया का नाम है। इन आदमियोंसे मुझे घृणा होने लगी; मुझे स्वयं अपनेसे घृणा हो गई और मैंने अनुभव किया कि यह मत सिर्फ धोखा-धड़ीके सिवा कुछ नहीं है।

लेकिन ताज्जुब है कि यद्यपि मैं इस धोखेबाजीको समझ और छोड़-

चुका था, पर मैंने उस पद-मर्यादाका त्याग नहीं किया जो इन आदमियों-ने मुझे दे रखी थी—यानी कलाकार, कवि और शिक्षककी मर्यादा। मैं बड़े भोलेपनके साथ कल्पना करता था कि मैं कवि और कलाकार हूं और मैं हर एकको शिक्षा दे सकता हूं, यद्यपि मैं स्वयं नहीं जानता था कि मैं क्या शिक्षा दे रहा हू। और मैं तदनुसार कार्य करता रहा।

इन आदमियोंके संसर्गसे मैंने एक नई बुराई सीखी मेरे अंदर यह असाधारण घमंड और मूर्खतापूर्ण विश्वास पैदा हुआ कि आदमियोंको शिक्षा देना ही मेरा धंधा है; चाहे मुझे स्वयं मालूम न हो कि मैं क्या शिक्षा दे रहा हूँ।

उस जमानेकी और अपनी तथा उन आदमियोंकी (जिनके समान आज भी हजारों हैं) मनोदशा याद करना अत्यंत दुःखदायक, भयानक और अनर्गल है और इससे मनमें ठीक वही भावना पैदा होती है जो आदमीको पागलखानेमें महसूस होती है।

उस समय हम सबका विश्वास था कि हमें जितनी तेजीके साथ और जितना ज्यादा मुमकिन हो बोलना, लिखना और छपाना चाहिए और यह सब मनुष्यके हितकेलिए जरूरी है। हममेंसे हजारोंने एक-दूसरेका खंडन और परस्पर निंदा करते हुए लिखा और छपवाया—दूसरोंकी शिक्षाकेलिए। और यह नहीं बताया कि हम कुछ नहीं जानते या जीवनके इस बिलकुल सीधे-सादे प्रश्नपर कि अच्छाई क्या है और बुराई क्या है, हम नहीं जानते कि हम क्या जवाब दें। हम एक-दूसरेकी सुनते न थे और सब एक ही वक्त बोलते थे; कभी इस खयालसे दूसरेका समर्थन और प्रशंसा करते थे कि वह भी मेरा समर्थन और प्रशंसा करेगा। और कभी एक-दूसरेसे नाराज हो उठते थे, जैसा कि पागलखानेमें हुआ करता है।

हजारों-लाखों मजदूर दिन-रात अपनी पूरी ताकतसे काम करते और उन करोड़ों अक्षरोंको टाइपमें इकट्ठा करते और छापते, जिन्हें डाकखाना सारे रूसमें फैला देता था। और हम सब शिक्षा देते ही जाते थे, हमें

शिक्षा देनेका काफी वक्ततक नहीं मिलता था, हमें सदा इस बातपर खीझ रहती थी कि हमारी तरफ काफी ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

यह बड़े ही ताज्जुबकी बात थी, पर इसका समझना मुश्किल न था। हमारी आंतरिक इच्छा तो यह थी कि अधिक-से-अधिक धन और प्रशंसा प्राप्त हो। इस मतलबको हल करनेकेलिए हम बस किताबें और अखबार लिख सकते थे। हम यही करते थे। पर यह फिजूलका काम करने और यह आश्वासन रखनेकेलिए कि हम बड़े महत्त्वपूर्ण लोग हैं, हमें अपने कामोंको उचित ठहरानेवाले एकमतकी आवश्यकता थी। इसलिए हम लोगोंके बीच यह मत चल पड़ा : 'जितनी बातोंका अस्तित्त्व है वे सब ठीक हैं। जो कुछ है उस सबका विकास होता है। यह विकास संस्कृतिके जरिये होता है और संस्कृतिकी माप किताबों और अखबारोंके प्रचारसे की जाती है। और चूंकि हमको किताबें और अखबार लिखनेसे धन और सम्मान मिलता है, इसलिए हम सब आदमियोंसे अच्छे और उपयोगी हैं।' अगर सब लोग एक रायके होते तो यह मत ठीक माना जा सकता था, पर हममेंसे हरएक आदमी, जो विचार प्रकट करता, दूसरा सदा उसके बिलकुल विरोधी विचार प्रकट करता था, इसलिए हमारे मनमें चिंता पैदा होनी चाहिए थी। पर हमने इसकी उपेक्षा की। लोग हमको धन देते थे और अपने पक्षके लोग हमारी तारीफ करते थे; इसलिए हममेंसे हर एक अपनेको ठीक समझता था।

आज मुझे साफ-साफ मालूम पड़ता है कि यह सब पागलखाने-जैसी बातें थीं; पर उस वक्त मुझे सिर्फ इसका धुंधला आभास था और जैसा कि सभी पागलोंका कायदा है, मैं अपने सिवा और सबको पागल कहता था।

: ३ :

इस तरहके पागलपनमें मैंने छः साल और बिता दिये—यानी तबतक जबतक कि मेरी शादी नहीं होगई। इस अवधिमें मैं विदेश गया। यूरोपमें मेरा जैसा जीवन रहा उससे और प्रमुख यूरोपियन विद्वानोंसे मेरा जो परिचय हुआ उससे मेरा यह विश्वास और दृढ़ हो गया कि पूर्णताकेलिए कोशिश करनी चाहिए; क्योंकि मैंने देखा कि उनका भी ऐसा ही विश्वास था। इस विश्वासने मेरे अंदर भी वही रूप ग्रहण किया जो हमारे जमानेके अधिकतर शिक्षित लोगोंके हृदयमें करता है। इसे 'प्रगति'के नामसे प्रकट किया जाता है। तभी मुझे खयाल आया कि इस शब्दके भी कुछ मानी हैं। दूसरे जीवित आदमियोंकी तरह मुझे भी यह सवाल परेशान किये हुए था कि मेरेलिए किस तरह जिंदगी बसर करना सबसे अच्छा होगा? पर उस समय तक मैं यह ठीक-ठीक नहीं समझ पाया था कि इस सवालपर मेरा जवाब, 'प्रगतिके अनुकूल जीवन बिताओ', नावपर सवार उस आदमीके जवाबकी तरह है जो तूफानके बीच पड़ा हुआ है और 'किधर नाव खेना है' का जवाब यह कहकर देता है कि 'हम कहीं बहे जा रहे हैं।'

उस वक्त वह बात मेरे ध्यानमें नहीं आई थी। कभी-कभी, बुद्धिसे समझकर नहीं, बल्कि अंतःप्रेरणासे मैं इस मिथ्या विश्वासके प्रति विद्रोह करता था, जो हमारे जमानेमें सर्वप्रचलित था और जिसके जरिये आदमी जिंदगीके मानी समझनेमें अपना अज्ञान खुद अपनेसे ही छिपाता है। उदाहरणार्थ जब मैं पेरिसमें ठहरा हुआ था तब एक आदमीको फांसी दी जाती देखकर मुझे प्रगतिमें विश्वासकी अस्थिरताका पता चला, जिसमें मेरा मिथ्या-विश्वास था। जब मैंने सिरको धड़से

जुदा होते देखा और शवको बक्समें भरा जाते देखा तब मैंने न सिर्फ अपने मस्तिष्कसे, बल्कि अपनी संपूर्ण अन्तरात्मासे यह महसूस किया कि हमारी वर्तमान प्रगतिका औचित्य सिद्ध करनेवाला कोई मत इस कार्यको उचित नहीं साबित कर सकता। यद्यपि दुनियाकी शुरुआत-से हरएक आदमीने चाहे किसी उसूलपर इसे जरूरी बताया है, पर मैं यह जानता हूँ कि यह गैरजरूरी और बुरा काम है। मैंने अनुभव किया है कि भला क्या है, इसका फैसला यह देखकर नहीं किया जा सकता कि लोग क्या कहते और करते हैं; प्रगति भी इसका निर्णय नहीं कर सकती-इसका फैसला तो मेरा हृदय और 'मैं' ही कर सकता हूँ। प्रगतिमें मूढ़ विश्वास जीवनका पथ-प्रदर्शन कर सकनेकेलिए नाकाफी है, यह मैंने दूसरी बार अपने भाईकी मौतपर अनुभव किया। वह बुद्धिमान् थे, भले थे और गंभीर स्वभावके थे। फिर भी जवानीमें ही बीमार पड़े, एक साल-से अधिक समयतक कष्ट भोगते रहे और बगैर यह समझे हुए कि वह किसलिए जिये और उनको किसलिए मरना पड़ रहा है बड़ी वेदनाके साथ उनकी मौत हो गई। इन सवालोंका जवाब मुझको या उनको, जब वह धीरे-धीरे कष्टपूर्वक मृत्युकी ओर अग्रसर हो रहे थे, किसी उसूल या मतसे नहीं हासिल हो सका। पर इस तरहके संदेह तो मेरे मनमें कभी-कभी ही उठते थे; वास्तवमें मैं प्रगतिका समर्थक बनकर जीवन व्यतीत करता रहा। 'सबका विकास होता है और उसके साथ मेरा भी विकास होता है; सबके साथ मेरा विकास क्यों होता है, इसका पता भी कभी लग जायगा।' उस समय इस तरहका विश्वास मुझे बना लेना चाहिए था।

विदेशसे लौटनेपर मैं देहातमें बस गया। यहां मुझे किसानोंके स्कूलोंमें काम करनेका मौका मिला, यह काम खास तौरपर मेरी रुचि-के अनुकूल था। इसमें मुझे उस झूठका सामना नहीं करना पड़ता था जो साहित्यिक साधनोंसे लोगोंको शिक्षा देते समय मेरे निकट स्पष्ट हो जाता था और मुझे घूरता था। यह ठीक है कि यहां भी मैंने 'प्रगति'

के नामपर काम किया; पर मैं अब स्वयं 'प्रगति'को संदेहकी दृष्टिसे देखता था। मैंने अपनेसे कहा—'कुछ मामलोंमें प्रगति गलत ढंग से हुई है। इन आदिम सीधे-सादे किसानोंके बच्चोंके साथ तो पूरी आजादीसे ही बर्ताव करना चाहिए और उनको खुद चुनने देना चाहिए कि वे प्रगतिका कौन-सा रास्ता पसंद करते हैं।' वास्तवमें मैं एक ही असाध्य समस्याके चारों तरफ लगातार चक्कर काट रहा था; वह समस्या यह थी कि 'क्या शिक्षा दी जाय, यह जाने बिना, किस तरह शिक्षा दी जा सकती है। ऊंचे दर्जेकी साहित्यिक सेवाके समय मैंने यह महसूस कर लिया था कि कोई तबतक शिक्षा नहीं दे सकता जबतक यह जान न ले कि क्या शिक्षा देनी है। मैंने देखा था कि सब लोग जुदा-जुदा ढंगसे शिक्षा देते हैं और आपसमें लड़कर सिर्फ एक दूसरेसे अपना अज्ञान छिपानेमें सफल होते हैं। लेकिन यहां किसानोंके बच्चोंके बीच काम करते हुए मैंने यह कठिनाई दूर करनेकेलिए सोचा कि मैं उन्हें पूरी आजादी दे दूंगा कि वे जो चाहें सीखें। अब मुझे यह याद करके आनंद आता है कि मैं अपनी शिक्षा देनेकी इच्छा तृप्त करनेके प्रयत्न में क्या-क्या करता था। अपनी अंतरात्मामें तो मैं अच्छी तरह जानता था कि मैं कोई उपयोगी शिक्षा नहीं दे सकता; क्योंकि मैं जानता ही नहीं कि क्या उपयोगी है। साल भरतक स्कूलका काम करनेके बाद मैं दूसरी बार इस बातकी खोज करने विदेश गया कि स्वयं कुछ न जानते हुए भी मैं दूसरोंको कैसे शिक्षा दे सकता हूँ।

और मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि मैंने विदेश जाकर यह सीख लिया और किसानोंकी मुक्तिके साल-(१८६१) में मैं इस अर्जित ज्ञानके साथ रूस लौटा। लौटते ही मैं पंच (किसानों और जमींदारोंके बीच शांति बनाये रखनेकेलिए) बना दिया गया। स्कूलमें मैंने अशिक्षित किसानोंको सिखाना-पढ़ाना शुरू किया और शिक्षित वर्गोंको एक पत्रिका निकालकर उसके द्वारा शिक्षा देने लगा। सब कुछ ठीक चलता हुआ मालूम पड़ता था, पर मैं महसूस कर रहा था कि मेरी मानसिक दशा

अच्छी नहीं है और इस तरहसे ज्यादा दिन चल नहीं सकता। उस समय यदि जीवनका एक दूसरा पहलू न शुरू हो जाता, जिसका अनुभव मैं अभीतक कर नहीं पाया था और जिससे सुखी हो जानेकी आशा थी, अर्थात् यदि मेरा विवाह न हो जाता तो, वैसी ही भयंकर निराशा होती जैसी पंद्रह साल बाद हुई।

एक सालतक मैंने अपनेको पंचायत, स्कूल और पत्रिकाके काम-में इतना व्यस्त रखा कि मैं--विशेष रीतिसे अपनी मानसिक व्यग्रताके कारण बिलकुल पस्त हो गया और बीमार पड़ गया। पंचकी हैसियत-से मुझे जबर्दस्त कशम-कश करनी पड़ती थी, स्कूलोंमें भी मेरे कामका अस्पष्ट परिणाम निकल रहा था और पत्रिकामें मेरी अपनी उलट-फेर-से घृणा होती थी (क्योंकि उसमें सिर्फ एक ही बात होती थी---हरएक को शिक्षा देनेकी इच्छा और यह छिपानेकी कोशिश कि मुझे इसका ज्ञान नहीं कि क्या शिक्षा देनी चाहिए)। मेरी बीमारी शारीरिक होने-की अपेक्षा मानसिक अधिक थी। मैंने सब काम छोड़ दिये और साफ-ताजी हवामें सांस लेने, कूमीज[1] पीने और सिर्फ जानवरों जैसी जिंदगी बितानेके खयालसे बशकीरके मैदानोंमें चला गया।

वहांसे लौटनेके बाद मैंने शादी कर ली। सुखी कौटुंबिक जीवन-ने मुझे जीवनके सामान्य अर्थकी खोजसे विमुख कर दिया। उस वक्त मेरी सारी जिदगी अपने कुटुंब, स्त्री और बच्चोंमें केंद्रित थी, इसीलिए मुझे अपनी जीविकाके साधन बढ़ानेकी फिक्र भी लग गई। अपनेको पूर्ण बनानेकी कोशिश करनेकी बजाय मैं सामान्य पूर्णता यानी प्रगतिको अपना चुका था, परंतु अब उसकी जगह मैं अपने और अपने कुटुंबके-लिए यथासंभव अच्छी-से-अच्छी सुविधाएं जुटानेकी कोशिशमें लग गया।

इस तरह पंद्रह साल और बीते।

१ घोड़ीके दूधसे बनाया हुआ एक तरहका हल्का नशा पैदा करनेवाला पेय।

यद्यपि अब मैं लेखन-कार्यको कोई महत्त्व नहीं देता था, फिर भी मैं उन पंद्रह सालोंमें यही कार्य करता रहा। मैं पुस्तक-लेखक होनेका प्रलोभन—आर्थिक पुरस्कार पाने और निकम्मी रचनाओंकेलिए यश प्राप्त करनेका प्रलोभन, अनुभव कर चुका था, और अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने तथा सामान्य जीवनके अर्थके संबंधमें अपनी अंतरात्माके अंदर उठनेवाले प्रश्नोंके दबा देनेकेलिए मैंने लिखना जारी रखा।

मेरे लिए जो एक-मात्र सचाई रह गई थी, वही मैं दूसरोंको अपनी रचनाओंके जरिये सिखाने लगा—यानी आदमीको इस तरह रहना चाहिए कि वह अपने कुटुंबकेलिए अधिक-से-अधिक सुख-सुविधाका प्रबंध कर सके।

इस तरह जिंदगीकी गाड़ी चलती रही; लेकिन पांच साल पहले एक अजीब अनुभव होने लगा। शुरूमें किसी क्षण परेशानी और उलझनका अनुभव होता था; ऐसा मालूम होता था कि जिंदगीकी रफ्तार बंद हो गई है, उसमें कोई रुकावट पैदा हो गई है और मैं नहीं जानता कि किस तरह जीना चाहिए और क्या करना चाहिए। मैं अपनेको खोया हुआ और खिन्न अनुभव करता था। लेकिन वे क्षण बीत जाते थे और मेरी जिंदगी पहले जैसी बीतती रही। कुछ दिनों बाद इस तरहकी उलझन बार-बार होने लगी और उसकी सूरत भी एक ही होती थी। यह उलझन कुछ इस सवालकी सूरतमें सामने आती थी : यह जीवन किसलिए है? यह कहां ले जाता है?'

शुरू-शुरूमें तो मुझे ऐसा लगता था कि ये बेमानी और बेसिर-पैर के सवाल हैं। मैंने सोचा कि यह सब अच्छी तरह जाना हुआ है और अगर कभी मैं इसे हल करना चाहूँगा तो मुझे कुछ ज्यादा मेहनत न करनी पड़ेगी; फिलहाल मेरे पास इसके लिए वक्त नहीं है, पर जब मैं चाहूँगा, इसका जवाब ढूंढ़ लूंगा। पर ये सवाल बार-बार दिमागमें उठने लगे और जवाब देनेकेलिए ज्यादा जोर देने लगे। एक ही

जगह गिरती हुई स्याहीकी तरह उन्होंने एक बड़ा काला निशान बना दिया।

इसका नतीजा वही हुआ जो घातक अंदरूनी बीमारीसे पीड़ित हर एक आदमीका होता है। पहले तबीयतकी गिरावटके हलके लक्षण दिखाई पड़ते हैं जिसकी तरफ अस्वस्थ आदमी ध्यान नहीं देता; फिर ये लक्षण जल्द-जल्द, बार-बार दिखाई पड़ने लगते हैं और फिर लगातार पीड़ाकी अवधिमें बदल जाते हैं। तकलीफ बढ़ती जाती है और इसके पहले कि बीमार आदमी अपने इर्द-गिर्द नजर डाले, वह चीज जिसे उसने महज तबीयतका भारीपन समझ रखा था, दुनियामें उसके लिए सब चीजोंसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण बन चुकी होती है—वह मौत है।

मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। मैंने समझ लिया कि यह कोई आकस्मिक अस्वस्थता नहीं है, बल्कि कोई बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। और अगर ये सवाल इसी प्रकार बार-बार सामने आते रहे तो इसका जवाब देना ही पड़ेगा। मैंने उनका जवाब देनेकी कोशिश की। ये सवाल अत्यंत मूर्खतापूर्ण, सीधे और बचकाने मालूम पड़ते थे, लेकिन ज्योंही मैंने उन्हें हल करनेकी कोशिश की, त्योंही मुझे यकीन हो गया कि (१) वे बचकाने और मूर्खतापूर्ण सवाल नहीं हैं, बल्कि जिंदगीके सवालोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण और गंभीर हैं और (२) मैं चाहे जितनी कोशिश करूं उनको हल करनेमें असमर्थ हूं। अपनी समाराकी जमींदारी संभालने, अपने बेटेकी शिक्षाका प्रबंध करने और किताब लिखनेके पहले मेरेलिए यह जानना जरूरी हो गया कि मैं यह सब क्यों कर रहा हूं। जबतक मैं जान न लेता तबतक कोई काम नहीं कर पाता था, यहांतक कि जिंदगी नामुमकिन मालूम पड़ती थी। उस वक्त मैं जमींदारीके इंतजाममें ज्यादा फंसा हुआ था, लेकिन उसके झंझटोंके बीच भी एकाएक यह सवाल मेरे दिमागमें पैदा हो जाता कि—

'तुम्हारे पास समारा सरकार में ६००० 'देसियातना'[1] जमीन है, ३००

[1] एक देसियातना लगभग पौने-तीन एकड़के बराबर होता है।

घोड़े हैं पर इसके बाद ?'...मैं परेशान हो जाता और समझमें नहीं आता कि क्या सोचूं ? इसी तरह अपने बच्चोंकी शिक्षाकी योजनाओं-पर विचार करते-करते मैं अपनेसे पूछने लगता—'यह किसलिए ?' जब इस बातपर विचार कर रहा होता कि किसानोंको समृद्ध कैसे बनाया जा सकता है, मैं एकाएक अपनेसे सवाल कर बैठता—'पर इससे मुझे क्या मिल सकेगा ?' अथवा जब मैं अपनी पुस्तकोंसे मिलनेवाली प्रसिद्धि पर विचार करता होता, तो अपनेसे पूछता—'बहुत अच्छा, तुम गोगल[1], पुश्किन[1], शेक्सपीयर[2], या मौलियर[3], बल्कि दुनियाके सब लेखकोंसे ज्यादा प्रसिद्ध होगे—पर इससे क्या ?' मुझे इसका कुछ भी जवाब नहीं सूझता था। उधर सवाल ठहरनेको तैयार न थे, वे तुरंत जवाब चाहते थे और अगर मैं उनका जवाब न देता तो मेरा जीना नामुमकिन था। पर क्या करता, कुछ जवाब ही न था।

मैंने अनुभव किया कि जिस चीज पर मैं इतने दिनोंसे खड़ा था वह गिर गई है और मेरे पांवके नीचे कोई आधार नहीं है; जिस चीजके सहारे मैं इतने दिनोंतक जी रहा था वह खत्म हो गई है और ऐसी कोई चीज नहीं रह गई है, जिसको लेकर मैं जी सकूं।

: ४ :

मेरे जीवनकी गति रुक गई। मैं सांस लेता, खाता-पीता और सोता था, इन कामोंको करनेकेलिए मैं मजबूर था; लेकिन जीवन नहीं रह गया था; क्योंकि ऐसी कामनायें नहीं रह गई थीं जिन्हें पूरा करना मैं उचित समझता होऊं। अगर किसी चीजकी कामना होती तो भी मैं पहलेसे ही समझ जाता था कि चाहे मैं उसे पूरा करूं या न करूं, इससे कुछ होने-जानेवाला नहीं है। इस समय अगर कोई परी मेरे पास

१ प्रसिद्ध रूसी लेखक। २ प्रसिद्ध अंग्रेजी नाटककार। ३ मशहूर फ्रांसीसी हास्य-नाट्य लेखक।

आकर वरदान मांगनेको कहती तो मुझे समझमें न आता कि उससे क्या मांगना चाहिए। यदि कभी-कभी नशेकी घड़ियोंमें मैं कोई ऐसी चीज महसूस करता था जो इच्छा तो नहीं, हां, पहलेकी इच्छाओंकी वजहसे पड़ी आदत होती थी, तो चित्त शांत और स्वस्थ होनेपर मैं समझ जाता था कि यह धोखा है और यह दरअसल इच्छा करने लायक कोई चीज नहीं है। मैं सत्यको जाननेकी इच्छा भी नहीं कर पाता था; क्योंकि मैं कल्पना कर चुका था कि सत्य क्या है। सत्य यह था कि जीवन निरर्थक है। मैं एक प्रकारसे तबतक जिंदगी बसर करता चला गया था जबतक ढालके ऊपर नहीं पहुंच गया और साफ-साफ यह देख नहीं लिया कि मेरे आगे विनाशके सिवा कुछ नहीं है। ठहरना या पीछे लौट जाना नामुमकिन था, पर अपनी आंखोंको बंद कर लेना या इस बातको न देखना भी नामुमकिन था कि कष्ट और मौत---पूर्ण विनाशके सिवा अब मेरे आगे कुछ नहीं है।

हालत यह हो गई थी कि मैं एक स्वस्थ और भाग्यवान आदमी अनुभव करता था कि अब मैं जी नहीं सकता; कोई अप्रतिहत शक्ति येनकेन जीवनसे छुटकारा पानेकेलिए मुझे धकेल रही है। मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं अपनी हत्या करना चाहता था। जो शक्ति मुझे जीवनसे दूर धकेल रही थी, वह किसी कामना से कहीं अधिक बलवान, पूर्ण और विस्तृत थी। यह उस शक्तिसे मिलती-जुलती थी, जो पहले मुझे एक अलग दिशामें, जीनेकेलिए प्रेरित करती थी। मेरी सारी शक्ति मुझे जीवनसे दूर लिये जा रही थी। जैसे पहले अपना जीवन सुधारने और विकसित करनेके विचार स्वभावत: मेरे मनमें आते थे वैसेही आत्म-विनाशका विचारभी मेरे मनमें उदित हुआ। और यह विचार कुछ ऐसा लुभावना था कि मुझे अपने साथ जबर्दस्ती करनी पड़ी कि कहीं मैं जल्दबाजीमें कुछ कर न बैठूं। मैं जल्दबाजी नहीं करना चाहता था; क्योंकि मैं जालसे निकलनेकी पूरी कोशिश कर लेना चाहता था। 'अगर मैं मामलोंको सुलझा नहीं सकता तो भी

इसकेलिए सदा सभय रहेगा।' उसी समय इसे भाग्यको अनुकूलता कहनी चाहिए, मैंने अपने कमरेकी रस्सी पाससे हटा दी। यह रस्सी परदा डालकर, कमरेका एक हिस्सा अलग करनेकेलिए टंगी थी, जिसके पीछे रोज रातमें अपने कपड़े उतारता था। मुझे डर पैदा हो गया था कि कहीं मैं इस रस्सीसे फांसी न लगा लूं। मैंने बंदूक लेकर बाहर शिकारकेलिए जाना बंद कर दिया कि कहीं आसानीसे मैं अपनी जीवन-लीला समाप्त न कर बैठूं। मैं खुद नहीं जानता था कि मैं चाहता क्या हूं; मैं जीवनसे भय खाता था, उससे भागना चाहता था; फिर भी उससे कुछ-न-कुछ आशा मुझे लगी हुई थी।

और मेरी यह हालत उस समय हो रही थी जब मैं चारों ओर वैभव से घिरा हुआ था। अभी मेरी उम्र पचासकी भी नहीं थी; मेरी पत्नी बड़ी नेक थी; वह मुझे प्यार करती थी और मैं उसे प्यार करता था। मेरे बच्चे अच्छे थे; मेरे पास एक बड़ी जमींदारी थी जो मेरे कुछ ज्यादा मेहनत किये बगैर बढ़ती जा रही थी। मेरे रिश्तेदार और परिचित लोग मेरा जितना आदर उस समय करते थे उतना पहले कभी नहीं करते थे। दूसरे लोग भी मेरी प्रशंसा करते थे और अधिक आत्म-वंचनाके बिना मैं सोच सकता था कि मेरा नाम प्रसिद्ध हो गया है। और पागल या मानसिक दृष्टिसे अस्वस्थ होना तो दूर रहा, इस समय मेरे शरीर और मस्तिष्कमें इतनी शक्ति थी जितनी मेरे दर्जेके आदमियोंमें शायद ही कभी पाई जाती है। शरीरकी दृष्टिसे, मैं किसानोंके बराबर कटाईका काम कर सकता था और मानसिक दृष्टिसे मैं लगातार ८ से १० घंटेतक, बिना थकावट या बुरे असरके, काममें लगा रह सकता था। ऐसी हालत में भी मुझे यह मालूम पड़ता था कि मैं जी नहीं सकूंगा और मौतके डरसे मैं अपने साथ चालाकियां चलता था कि कहीं खुद अपनी जान न ले बैठूं।

मेरी मानसिक स्थिति मेरे सामने कुछ इस तरह आती थी; मेरी जिंदगी एक मूर्खतापूर्ण और ईर्ष्यासे भरी हुई दिल्लगी है जो किसीने

मेरे साथ की है। यद्यपि मैं अपनेको पैदा करनेवाले इस 'किसी'को मानता न था फिर भी इस तरहका विचार स्वभावत: मेरे मनमें पैदा होता था कि किसीने इस दुनियामें लाकर मेरे साथ बुरा और भद्दा मजाक किया है।

बगैर किसी तरहकी कोशिशके मेरे अंदर यह खयाल पैदा हुआ कि कहीं-न-कहीं कोई ऐसा जरूर है जो यह देखकर हंस रहा है कि मैं तीस या चालीस सालोंतक किस तरह रहता रहा हूं; किस तरह मैं शरीर और मस्तिष्कसे प्रौढ़ होता, सीखता एवं विकसित होता रहा हूं—और प्रौढ़ मानसिक शक्तियोंके साथ जीवनकी उस चोटीपर पहुँचकर, जहांसे सब चीजें मेरे सामने पड़ी दिखाई देती हैं, मैं महामूर्ख की तरह खड़ा होता हूँ और साफ देख रहा हूँ कि जीवनमें कुछ नहीं है, न कुछ रहा है और न कभी कुछ रहेगा। और वह हंस रहा है।

लेकिन मुझपर हंसनेवाला 'वह कोई' हो या न हो, मेरी हालत तो खराब ही थी। मैं अपने किसी कामका, या संपूर्ण जीवनका कोई उचित अर्थ ढूंढ़ नहीं पाता था। मुझे इसपर ताज्जुब हुआ कि मैंने शुरूसे इस बातकी जानकारीसे अपनेको अलग रखा—यह बहुत दिनोंसे सबको मालूम ही है कि प्रियजनोंकी अथवा मेरी आज या कल बीमारी और मौत आयगी ही (वे दोनों आ ही चुकी थीं) बदबू और कीड़ोंके अलावा कुछ बाकी न रह जायगा। शीघ्र या कुछ देरसे मेरी बातें लोग भूल जायंगे और मेरा अस्तित्व न रह जायगा। तब चेष्टा करनेसे लाभ क्या?...मनुष्यको यह बात कैसे नहीं दिखाई पड़ती है? कैसे वह जिंदगी बसर करता जाता है? यह अचंभेकी बात है! कोई तभीतक जी सकता है जबतक वह जीवनसे मतवाला हो; ज्योंही वह शांत और संयमी हुआ उसका यह न देखना नामुमकिन हो जाता है। सब-कुछ धोखा और मूर्खतापूर्ण प्रवंचना है! बात ठीक ऐसी ही है, इसमें हंसी या मनोरंजनकी कोई बात नहीं है; जीवन निर्दय और मूर्खतापूर्ण है'।

पूरबकी एक बड़ी पुरानी कहानी है। एक मुसाफिर रास्तेसे कहीं जा रहा था। एक मैदानमें उसकी किसी क्रुद्ध जंगली जानवरसे भेंट हो गई। वह मुसाफिर जानवरसे भागकर पासके सूखे कुएंमें घुस गया। पर जब उसने नीचे नजर डाली तो देखता क्या है कि एक अजगर उसे निगलनेकेलिए अपना मुंह खोले हुए है। अब वह अभागा आदमी न तो जानवरके डरसे कुएंसे बाहर ही आनेकी हिम्मत करता है और न अजगरके डरसे कुएंके अंदर ही कूदनेका साहस करता है। बचनेके लिए वह कुएंकी एक दरारमें निकली हुई टहनी पकड़कर लटक जाता है। उसके हाथ शिथिल होते जा रहे हैं और वह महसूस करता है कि जल्द ही उसे अपनेको ऊपर या नीचे मौतके हाथमें सौंपना पड़ेगा। फिर भी वह लटका ही रहता है। इतनेमें ही वह देखता क्या है कि दो चूहे एक सफेद और एक काला—बार-बार उस टहनीकी जड़-के इर्द-गिर्द घूमते हुए उसे काट रहे हैं। जल्द ही टहनी टूट जायगी और उसे अजगरके मुंहमें समा जाना होगा। मुसाफिर यह सब देखता है और जान लेता है कि उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। इसी बीच लटके-ही-लटके वह अपने चारों तरफ दृष्टि डालता है और देखता क्या है कि टहनीकी पत्तियोंपर शहदकी कुछ बूंदें पड़ी हुई हैं; वह झुककर जबानसे उन्हें चाट लेता है। यही हालत मेरी है। मैं भी यह जानते हुए कि मौतका अजदहा टुकड़े-टुकड़े कर देनेकेलिए मेरी बाट जोह रहा है, मैं जीवनकी टहनी पकड़े हुए हूँ और समझमें नहीं आता कि क्यों ऐसी यातना भोग रहा हूं। मैंने शहद चाटनेकी कोशिश की जिससे पहले मुझे कुछ शांति मिली, पर अब शहद चाटनेसे सुख नहीं मिलता था, और दिन और रात-रूपी सफेद और काले चूहे जिंदगी-की उस टहनीको बराबर काट रहे थे, जिसे मैं पकड़े हुए था। मैंने साफ-साफ अजदहेको देख लिया था और अब शहद मीठा नहीं लगता था। मैं सिर्फ अजदहे और चूहोंको देख रहा था और उस ओरसे अपनी दृष्टि हटा नहीं पाता था। यह कोई कहानी नहीं, बल्कि एक

ऐसी वास्तविक सच्चाई है, जिसका जवाब नहीं और जो सबकी समझमें आ सकती है।

जीवनके आनंदकी वंचनाएं, जो मेरे अजदहेके भयको दबा रखती थीं, अब मुझे धोखा देनेमें असमर्थ थीं। चाहे मुझसे कितनी ही बार कहा जाय कि—'तुम जीवनका अर्थ नहीं समझ सकते, इसलिए उसके बारेमें कुछ मत सोचो और जिओ,' पर मैं अब ऐसा नहीं कर सकता; मैंने काफी अरसे तक यही किया है। अब मैं दिन-रातको चक्कर काटते और मेरी मौतको नजदीक लाते देख रहा हूँ और इससे आंख मूंदनेमें असमर्थ हूँ। मैं इतना ही देख पाता हूँ; क्योंकि इतना ही सत्य है। बाकी सब झूठ है।

शहदकी जिन दो बूंदोंने औरोंकी अपेक्षा अधिक दिनतक इस निष्ठुर सत्यसे मेरी आंखोंको दूर रखा, उनमें—कुटुंब तथा लेखन-कार्य पर मेरी आसक्ति, जिसे मैं कलाके नामसे पुकारता था—अब मिठास नहीं मालूम पड़ती थी।

'कुटुंब'...मैंने अपने मनमें कहा। पर मेरा कुटुंब—पत्नी और बच्चे—भी तो मनुष्य हैं। उनकी भी वही स्थिति है जो मेरी है; उनको भी या तो झूठके बीच रहना है या फिर भयंकर सत्यको देख लेना है। वे क्यों जियें? मैं उन्हें क्यों प्यार करूं? क्यों उनकी रक्षा करूं? और क्यों उनका पालन-पोषण या देख-रेख करूं? इसलिए कि वे मेरी तरह निराशाका अनुभव करें या फिर मूर्खतामें पड़े रहें? जब मैं उन्हें प्यार करता हूँ तब उनसे सत्यको कैसे छिपा सकता हूँ? और ज्ञानका प्रत्येक पग उनको सत्यके निकट ले जाता है। वह सत्य मौत है।

'कला, कविता?'—सफलता और लोगोंकी प्रशंसाके कारण मैंने बहुत दिनोंतक अपने दिलको समझा रखा था कि यह ऐसी चीज है जिसे आदमी करता रह सकता है—यद्यपि मौत नजदीक आती जा रही थी—वह मौत जो सब चीजोंको नष्ट कर देती है, जो मेरी रचना और उसकी यादको भी नष्ट कर देगी। लेकिन जल्द ही मैंने देख लिया

कि यह भी एक धोखा ही है। मुझे स्पष्ट था कि कला जीवनका आभूषण है, जीवनका प्रलोभन है। लेकिन मेरेलिए जीवनका आकर्षण दूर हो चुका था; तब दूसरोंको मैं कैसे आकर्षित करता? जबतक मैं स्वयं अपना जीवन नहीं बिताता था, बल्कि किसी दूसरेके जीवनकी लहरोंपर बह रहा था—जबतक मेरा विश्वास था कि जीवनके कुछ अर्थ हैं, फिर चाहे उसे मैं व्यक्त न कर सकूं—तबतक कविता और कलामें जीवनकी छाया पाकर मुझे प्रसन्नता होती थी; कलाके दर्पणसे जीवनका दर्शन करना अच्छा लगता था। लेकिन जब मैंने जीवनका अर्थ जाननेकी चेष्टा आरंभकी और मुझे स्वयं अपना जीवन बितानेकी आवश्यकता अनुभव हुई, तब वह दर्पण मेरेलिए अनावश्यक, व्यर्थ, हास्यास्पद और दुखदायी हो गया। दर्पणमें अब मुझे दीखता था कि मेरी स्थिति मूर्खता तथा नैराश्यपूर्ण है इससे मुझे शांति नहीं मिलती थी। जब मैं अपनी अंतरात्माकी गहराईसे विश्वास करता था कि जीवनका कुछ अर्थ है तब दृश्य देखनेमें सुहावना लगता था। उस समय जीवनमें अंधकार और प्रकाशके खेलों—हास्य, दुःखांत, करुण, सुंदर और भयंकर—से मेरा मनोरंजन होता था। पर जब मैं जान गया कि जीवन निरर्थक और भयंकर है, तब दर्पणमें अंधकार और प्रकाशके खेल मेरा मनोरंजन न कर सकते थे जब मैंने अजदहेको देख लिया और यह भी देख लिया कि मैं जिस चीजका सहारा लिये हुए हूँ उसे चूहे काट रहे हैं तब शहदकी कोई मिठास मुझे कैसे मीठी लग सकती थी?

बात यहींतक न थी। यदि मैंने केवल इतना ही समझा होता कि जीवनके कोई अर्थ नहीं हैं, तो मैं यह मानकर कि मेरे भाग्यमें यही था, सब कुछ शांतिसे सहन कर लेता। लेकिन मैं अपनेको इतनेसे ही संतुष्ट न कर सका। अगर मैं जङ्गलमें रहनेवाले उस आदमीकी तरह होता जो जानता है कि इससे निकलनेका कोई रास्ता नहीं है तो मैं जी सकता था; पर मेरी दशा तो उस आदमीकी तरह थी जो जंगलमें रास्ता

भूल जानेके कारण, भयभीत होकर, रास्ता ढूंढनेकेलिए, इधर-उधर दौड़ता फिरता हो। वह जानता है कि हरएक कदम उसे ज्यादा उलझन-में डाल रहा है, फिर भी वह दौड़ना बन्द नहीं करता।

निश्चय ही यह भयंकर अवस्था थी और भयसे बचनेकेलिए मैं खुद अपनेको मार डालना चाहता था। आगे मेरा क्या होने वाला है, इसका खौफ भी मैं महसूस करता था और जानता था कि यह भय मेरी मौजूदा हालतसे भी कहीं खराब है। इतनेपर भी मैं शांतिपूर्वक अपनी मृत्युकी प्रतीक्षा नहीं कर सकता था। चाहे यह तर्क कितना ही विश्वसनीय लगता रहा हो कि किसी दिन हृदयकी कोई शिरा या और कोई चीज फट पड़ेगी और सब-कुछ समाप्त हो जायगा, पर मैं शांतिके साथ उस दिनकी बाट जोहनेमें असमर्थ था। अंधकारका भय बहुत अधिक था और मैं गलेमें फांसी डालकर या गोली मारकर, मतलब किसी तरह जल्दी-से-जल्दी जिंदगीसे छूटना चाहता था। यही भावना बड़े जोरोंसे मुझे आत्म-हत्याकी ओर ले जा रही थी।

: ५ :

'लेकिन शायद मैंने कोई चीज नजर-अंदाज कर दी है या समझनेमें मुझसे गलती होगई है? मैं कई बार अपनेसे कहा करता—'यह तो नहीं होसकता कि निराशाकी यह हालत मनुष्यकेलिए स्वाभाविक हो।' तब मैंने मानव-संचित ज्ञानकी विविध शाखाओंमें इन समस्याओंका हल ढूंढनेकी कोशिश की। व्यर्थकी उत्कंठासे या उदासीनताके साथ मैंने यह खोज नहीं की, बल्कि कष्ट उठाकर लगातार रात-दिन उसकी खोजमें लग गया, जैसे कोई डूबता हुआ आदमी अपनी रक्षाकेलिए कोशिश करता है। लेकिन मुझे कुछ नहीं मिला।

मैंने सभी विज्ञानोंमें इन समस्याओंका हल खोजा, पर जो कुछ मैं खोजता था उसे पाना तो दूर रहा, उल्टे मुझे विश्वास हो गया कि मेरी

तरह जितने लोगोंने भी ज्ञान-मार्गसे जीवनका अर्थ जाननेकी कोशिश की है उनको कुछ नहीं मिला है। सिर्फ इतना ही नहीं कि उनको कुछ न मिला हो; बल्कि उनको साफ-साफ कहना पड़ा कि जिस चीज—यानी जीवनकी निरर्थकता—ने मुझको इतना निराश कर रखा है, वही एक ऐसी असंदिग्ध बात है जिसे आदमी जान सकता है।

मैंने सभी जगह खोजा; और चूंकि मेरा जीवन ज्ञानकी साधनामें ही बीता था और विद्वानोंकी दुनियासे मेरा संबंध था, इस कारण ज्ञानकी सभी शाखाओंमें वैज्ञानिकों और विद्वानोंतक मेरी पहुँच थी। उन्होंने बड़ी खुशीके साथ अपना सारा ज्ञान, न केवल पुस्तकोंसे, बल्कि वार्त्तालापसे भी, मुझे सुगम कर दिया, जिससे विज्ञान जीवनके प्रश्न पर जो कुछ कहता था उस सबकी जानकारी मुझे हो गई।

बहुत दिनोंतक मैं यह विश्वास करनेमें असमर्थ रहा कि यह (विज्ञान) जीवनके प्रश्नोंका जो जवाब देता है उसके अलावा दूसरा कोई जवाब नहीं दे सकता। मैंने देखा कि विज्ञान अपनी महत्त्वपूर्ण और गंभीर मुद्राके साथ अपने उन नतीजों या परिणामोंका एलान करता है, जिनका मनुष्य-जीवनके वास्तविक प्रश्नोंसे कोई संबंध नहीं, और बहुत दिनोंतक मैं यही समझता रहा कि इसमें कोई ऐसी बात जरूर है जिसे मैं नहीं समझ पाया हूँ। बहुत दिनोंतक मैं विज्ञानके सामने भीरु बना रहा और मुझे ऐसा मालूम होता रहा कि जवाबों और मेरे सवालोंके बीच एक-रूपताका अभाव विज्ञानके दोषके कारण नहीं है; बल्कि मेरी नादानीके कारण है। लेकिन मेरेलिए यह कोई खेल या मनोरंजनका विषय नहीं था, बल्कि जीवन और मृत्युका प्रश्न था, और मैं इस निश्चयपर पहुँचा कि मेरे प्रश्न जीवनके वास्तविक प्रश्न हैं, और वे सारे ज्ञानके आधार हैं और दोष मेरे प्रश्नोंका नहीं, बल्कि विज्ञानका होना चाहिए, यदि वह इन प्रश्नोंका उत्तर देनेका रूपक भरता है।

मेरा प्रश्न—जिसने ५० सालकी उम्रमें मुझे आत्म-हत्याके निकट पहुँचा दिया—एक बहुत ही सीधा और सरल प्रश्न था, जो मूर्ख बच्चेसे

कर एक बड़े बुद्धिमान् प्रौढ़ व्यक्ति तककी आत्मामें उठा करता है। यह एक ऐसा प्रश्न था जिसका जवाब दिये बगैर कोई जी नहीं सकता, जैसा कि मैंने अनुभवसे समझा है। प्रश्न यह था : 'मैं आज जो कुछ कर रहा हूँ या कल जो कुछ करूंगा उसका नतीजा क्या निकलेगा—मेरे सारे जीवनका क्या नतीजा निकलेगा ?'

दूसरी तरहसे कहा जाय तो इस प्रश्नका यह रूप होगा : "मैं क्यों जिऊं ? क्यों किसी चीजकी इच्छा करूं ? क्यों कोई काम करूं ?" इसे यों भी व्यक्त किया जा सकता है : "क्या मेरे जीवनका कोई ऐसा तात्पर्य है कि मेरी बाट जोहती हुई अनिवार्य मृत्युसे भी उसका नाश न होगा ?"

कई तरहसे व्यक्त किये जानेवाले इस एक प्रश्नका उत्तर मैंने विज्ञानसे जानना चाहा और मुझे पता चला कि इस प्रश्नके संबंधमें मनुष्यका सारा ज्ञान दो विरोधी गोलार्द्धोंमें बंटा हुआ है, जिनके दोनों सरोंपर दो ध्रुव हैं—एक निषेधात्मक और दूसरा निश्चयात्मक। लेकिन न तो पहले और न दूसरे ध्रुवपर जीवनके प्रश्नका उत्तर मिलता है।

विज्ञानका एक दूसरा वर्ग, मालूम पड़ता है, यह प्रश्न स्वीकार नहीं करता, पर अपने स्वतंत्र प्रश्नोंका स्पष्ट और ठीक-ठीक उत्तर देता है। मेरा मतलब प्रयोगात्मक विज्ञानोंसे है, जिनके अंतिम छोरपर गणित है। विज्ञानका एक दूसरा वर्ग इस प्रश्नको स्वीकार करता है, लेकिन इसका उत्तर नहीं देता; यह निगूढ़ विज्ञानोंका वर्ग है और इनके अंतिम छोर-पर अध्यात्म-विज्ञान है।

शुरू जवानीसे ही निगूढ़ विज्ञानोंमें मेरी दिलचस्पी थी लेकिन बादमें गणित एवं प्राकृतिक विज्ञानोंकी ओर मेरा आकर्षण हो गया, और जबतक मैंने निश्चित रूपसे अपना प्रश्न अपने सम्मुख नहीं रखा, और जबतक वह प्रश्न स्वयं मेरे अंदर पल्लवित होकर मुझे तुरंत जवाब देनेके लिए विवश नहीं करने लगा तबतक मैंने उन नकली जवाबोंपर ही संतोष किया, जो विज्ञान देता है।

प्रयोगात्मक विज्ञानके क्षेत्रमें तो मैंने अपनेसे यह कहा—'प्रत्येक वस्तु जटिलता और पूर्णताकी तरफ बढ़ती हुई स्वयं विकसित होती और विशेषता प्राप्त करती है और कुछ नियम उनकी इस गति का नियंत्रण करते हैं। तुम संपूर्णके एक अंश हो। जहांतक जानना संभव है वहांतक संपूर्णको जान लेने और विकासके नियमका परिचय प्राप्त कर लेनेपर तुमको संपूर्णके बीच अपने स्थानका पता भी चल जायगा।' मुझे कहते हुए लज्जा होती है कि एक ऐसा समय था जब मैं इस उत्तरसे संतुष्ट दीखता था। यह वही समय था जब मैं स्वयं अधिक जटिल बनता जा रहा था और विकसित हो रहा था। मेरी मांस-पेशियां विकसित और दृढ़ हो रही थीं, मेरी स्मरण-शक्ति, मेरी समझने-सोचनेकी शक्ति बढ़ रही थी; और अपने अंदर इस विकासका अनुभव करते हुए मेरे लिए यह सोचना स्वाभाविक था कि जगतका नियम ऐसा ही है और इसीमें मुझे अपने जीवनके प्रश्नका हल ढूंढना चाहिए। लेकिन एक ऐसा समय आया जब मेरे अंदरका विकास रुक गया। मैंने अनुभव किया कि मेरा विकास नहीं हो रहा है; बल्कि मैं मुरझा रहा हूँ, मेरी मास-पेशियां कमजोर होती जाती हैं, मेरे दांत गिरते जाते हैं, और मैंने देखा कि नियमसे न केवल कोई बात समझमें नहीं आती, बल्कि ऐसा कोई नियम न तो कभी था, न कभी हो सकता है और मैंने अपने जीवनकी एक अवस्थामें अपने अंदर जो कुछ पाया उसे ही नियम मान लिया था। अब मैंने इस नियमकी परिभाषापर विचार करना शुरू किया तो मेरे सामने यह बात स्पष्ट हो गई कि इस तरह अनंत विकासका कोई नियम नहीं हो सकता। यह स्पष्ट हो गया कि यह कहना कि 'असीम अवकाश और समयमें प्रत्येक वस्तु विकसित होती है, अधिक पूर्ण और जटिल होती है तथा विशेषता प्राप्त करती है, मानो कुछ न कहनेके बराबर है। ये शब्द बेमानी हैं; क्योंकि असीममें न कुछ जटिल है, न सरल है, न आगे बढ़ना है, न पीछे हटना है, न अच्छा है, न बुरा।

फिर इन सबके ऊपर मेरा निजी सवाल कि मैं 'अपनी इच्छाओंके

साथ क्या हूँ ?,' अनुत्तरित हो रहा। मैं समझ गया कि वे सब विज्ञान बड़े दिलचस्प हैं, बड़े आकर्षक हैं पर जीवनके प्रश्नके ऊपर उनके प्रयोगका जहांतक सवाल है वे उल्टी दिशामें ही ठीक और स्पष्ट हैं। जीवनके प्रश्नपर उनकी संगति जितनी ही कम बैठती है उतने ही यथार्थ और स्पष्ट वे हैं। वे जीवनके प्रश्नका उत्तर देनेकी जितनी ही कोशिश करते हैं, उतने ही और आकर्षण-हीन होते जाते हैं। अगर कोई विज्ञानोंके उस विभागकी तरफ ध्यान दे जो जीवनके प्रश्नका उत्तर देनेकी कोशिश करता है (इस विभाग में शरीर-विज्ञान, मनोविज्ञान, जीव-विज्ञान, समाज-विज्ञान आदि हैं) तो वहां उसे विचारोंकी आश्चर्य-जनक दीनता सबसे अधिक अस्पष्टता, अप्रासंगिक प्रश्नोंको हल करनेका एक बिलकुल अनुचित और झूठा दावा तथा हर एक आचार्य द्वारा दूसरेका, और अपने द्वारा अपनी ही बातोंका भी, निरंतर खंडन होता दिखाई देगा। अगर हम उन विज्ञानोंकी तरफ देखते हैं, जिनका जीवनके प्रश्नोंको हल करनेसे कोई संबंध नहीं है, पर जो स्वयं अपने विशेष वैज्ञानिक प्रश्नोंका जवाब देते हैं, तो इंसानकी दिमागी ताकतको देखकर मुग्ध हो जाना पड़ता है, पर हम पहलेसे ही जान चुके होते हैं कि वे जीवन के प्रश्नोंका कोई जवाब नहीं देते। वे तो जीवनके प्रश्नोंकी उपेक्षा करते हैं। उनका कहना है; 'तुम क्या हो और क्यों जीते हो, इस प्रश्नका न तो हमारे पास जवाब है और न उसके बारेमें हम सोचते हैं। हां, अगर तुम प्रकाश और रासायनिक मिश्रणोंके नियमोंको जानना चाहो, अगर तुम चेतन पदार्थों-के विकासके नियमोंसे अवगत होना चाहो, अगर तुम देह और उसके रूपके नियमोंकी जानकारी हासिल करना चाहो, अगर तुम गुण और परिमाणका संबंध जानना चाहो, अगर तुम अपने मस्तिष्कके नियमोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहो तो इन सबके हमारे पास स्पष्ट, यथार्थ और निर्विवाद उत्तर मौजूद हैं।'

साधारण ढंगसे कहना चाहें तो जीवन के प्रश्नोंके साथ प्रयोगात्मक विज्ञानोंके संबंधको यों व्यक्त किया जा सकता है : प्रश्न—'हम क्यों जी

रहे हैं ?' उत्तर–'अनंत अवकाश और अनंत कालमें अत्यंत क्षुद्र अंश अनंत जटिल रूपोंको ग्रहण करते हैं। जब तुम इस रूप-परिवर्तनके नियमोंको समझ लोगे जब तुम यह भी जान जाओगे कि पृथ्वीपर क्यों रह रहे हो ?'

इसके बाद मैंने निगूढ़ विज्ञानोंके क्षेत्रमें अपनेसे कहा–'संपूर्ण मानवता आध्यात्मिक सिद्धान्तों और आदर्शोंके आधारपर जीती और विकसित होती है। यही सिद्धांत और आदर्श उसका पथ-प्रदर्शन करते हैं। ये आदर्श धर्म, विज्ञान, कला और शासन-पद्धतिमें व्यक्त होते हैं। ये आदर्श दिन-दिन ऊंचे होते जाते हैं और मानवता अपने सर्वोच्च कल्याणकी ओर बढ़ती जाती है। मैं मनुष्यताका अंश हूँ, इसलिए मेरा धंधा मानवताके आदर्शोंकी स्वीकृति और साधनाको आगे बढ़ाना है।' और अपनी मानसिक दुर्बलताके जमानेमें मैं इस उत्तरसे संतुष्ट था; पर ज्योंही जीवनका प्रश्न मेरे सामने स्पष्ट रूपमें आया, ये विचार तुरंत टुकड़े-टुकड़े होकर खत्म हो गये। जिस सिद्धांत-हीन दुर्बोधताके साथ ये विज्ञान मनुष्य-जातिके एक छोटे हिस्सेपर किये गए अध्ययनके बलपर स्थापित परिणामोंको सामान्य परिणामोंके रूपमें व्यक्त करते हैं, जिस प्रकार मनुष्यताके आदर्शोंके विषयमें इसके विभिन्न अनुयायी एक दूसरेके मतका खंडन करते हैं, इन बातोंको छोड़ भी दें तो भी इस विचार-धारामें यदि मूर्खता नहीं तो आश्चर्य यह है कि हर आदमीके सामने आनेवाले प्रश्नों: 'मैं क्या करूँ' या 'मैं क्यों जीता हूँ ?' या 'मुझे क्या करना चाहिए ?' का जवाब देने के लिए पहले इस प्रश्न का जवाब ढूंढ़ना जरूरी समझा जाता है कि 'समष्टिका जीवन क्या है' (और यह उसकेलिए अज्ञात है और समयकी एक अत्यंत क्षुद्र अवधिमें वह इसके एक अत्यंत क्षुद्र अंशसे परिचित है)। इस मतसे यह जाननेकेलिए कि वह क्या है, मनुष्यको पहले सारी रहस्यमयी मानव-जाति की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए—उस मानव-जातिकी, जिसमें उसीकी तरह अगणित आदमी हैं, जो एक-दूसरेको नहीं जानते-बूझते।

मैं स्वीकार करता हूँ कि कि ऐसा भी एक जमाना था जब मैं इन बातोंमें विश्वास करता था। यह वही जमाना था जब अपनी सनकोंको उचित ठहरानेवाले कुछ प्रिय आदर्श मैंने बना रखे थे और एक ऐसे सिद्धांत-का निर्माण करनेका मैं प्रयत्न कर रहा था जिससे मेरी सनकोंको ही मानवताका नियम माना जा सके। लेकिन ज्योंही मेरी आत्मामें जीवनका प्रश्न पूरी स्पष्टताके साथ उदित हुआ, त्योंही यह जवाब मिट्टीमें मिल गया और मैंने समझ लिया कि जैसे प्रयोगात्मक विज्ञानोंमें ऐसे सच्चे विज्ञान और अधूरे विज्ञान हैं जो अपनी शक्ति और योग्यताके बाहरके सवालोंका जवाब देनेकी कोशिश करते हैं, उसी तरह इस क्षेत्रमें भी ऐसे मिश्र विज्ञानोंका एक पूरा वर्ग है जो अप्रासंगिक प्रश्नोंका जवाब देनेकी कोशिश करते हैं। इस तरहके अधूरे विज्ञान, न्याय-विधान और सामाजिक-ऐतिहासिक विज्ञान, अपने-अपने ढंगपर, संपूर्ण मानवताके जीवनके प्रश्नको हल करनेका बहाना करते हुए मनुष्यके जीवनके प्रश्नोंको हल करनेकी चेष्टा करते हैं।

पर जिस प्रकार मनुष्यके प्रयोगात्मक ज्ञानके क्षेत्रमें जो व्यक्ति सचाई-के साथ शोध करता है कि उसे किस तरह जीवन बिताना चाहिए और उसे इस उत्तरसे संतोष नहीं हो सकता कि—'असीम अवकाशमें असंख्य अणुओंके अनंतकालके बीच असीम जटिल परिवर्तनोंका अध्ययन करो, तब तुम जीवनको समझ सकोगे', उसी प्रकार एक ईमानदार आदमी इस उत्तरसे भी संतुष्ट नहीं हो सकता कि—'मानव-जातिके संपूर्ण जीवनका अध्ययन करो, जिसके आदि-अंत तकका हमें पता नहीं है, जिसके एक अंश तकका हमें ज्ञान नहीं है, और तब तुम अपने जीवनको समझ सकोगे।' प्रयोगात्मक अधूरे विज्ञानोंकी तरह ये अन्य अधूरे विज्ञान भी अस्पष्टताओं, अयथार्थताओं, मूर्खताओं और पारस्परिक विरोधोंसे पूर्ण हैं। प्रयोगात्मक विज्ञानकी समस्या तो भौतिक व्यापारमें कार्य-कारणके अनु-क्रमकी समस्या है। पर प्रयोगात्मक विज्ञानमें ज्योंही एक अंतिम कारणका प्रश्न उपस्थित किया जाता है त्योंही वह मूर्खतापूर्ण हो जाता है।

निगूढ़ विज्ञानकी समस्या जीवनके मूलतत्त्वकी स्वीकृतिकी समस्या है। ज्योंही पारस्परिक व्यापार-(जैसे सामाजिक और ऐतिहासिक व्यापार) की खोज आरम्भ होती है; यह भी मूर्खतापूर्ण बन जाता है।

प्रयोगात्मक विज्ञान जब अपने शोधमें अंतिम कारणका प्रश्न नहीं उठाता तभी निश्चयात्मक उत्तर देता और मानव-मस्तिष्ककी महानता प्रकट करता है। इसके विपरीत निगूढ़ विज्ञान जब दृश्य व्यापारके पारस्परिक कारणोंसे संबंध रखनेवाले सवालोंको किनारे रख देता है और मनुष्यका अंतिम कारणके संबंधसे अध्ययन करता है, तभी वह विज्ञान होता है और मानवीय मस्तिष्ककी महानताका प्रदर्शन करता है। विज्ञानके इस राज्यमें, गोलकके ध्रुव रूपमें, अध्यात्म-विद्या या तत्त्व-दर्शन है। यह विज्ञान इस प्रश्नका स्पष्ट वर्णन करता है कि 'मैं क्या हूँ और जगत् क्या है ? मेरा अस्तित्त्व क्यों है और जगत्का अस्तित्व क्यों है ?" जबसे इसका अस्तित्त्व है यह एक ही तरह का उत्तर देता रहा है। चाहे दर्शन-शास्त्री मेरे अंदर मौजूद जीवन-तत्त्वको, या अन्य सब चीजोंके अंदरके जीवन–सारको, 'धारणा', 'सार', 'भावना' (स्पिरिट) अथवा 'संकल्प-शक्ति'के नामसे पुकारे, असलमें वह एक ही बात कहता है : यह तत्त्व मौजूद है और मैं उसी तत्त्वसे बना हूँ, पर यह तत्त्व क्यों मौजूद है, इसे वह नहीं जानता और अगर वह सच्चा चितक है तो ऐसा कहता भी नहीं। मैं पूछता हूँ : कि यह तत्त्व मौजूद ही क्यों रहे ? यह है और रहेगा। इससे नतीजा क्या निकलता है ?'...दर्शन न केवल इसका कोई उत्तर नहीं देता, बल्कि यह स्वयं यही प्रश्न पूछता रहता है। और अगर वह सच्चा दर्शन है तो उसकी सारी चेष्टा इस प्रश्नको स्पष्टतापूर्वक रखनेतक ही है। अगर वह दृढ़तापूर्वक अपने कर्त्तव्यपर डटा रहे तो सवालका जवाब सिर्फ इसी तरह देगा : 'मैं क्या हूँ और जगत् क्या है ?'—'सब कुछ और कुछ भी नहीं।' इसी तरह वह 'क्यों'के जवाबमें कहेगा:—'मैं नहीं जानता।'

इस तरह मैं दर्शन-शास्त्रके इन जवाबोंको चाहे जिस तरह उलटूं-

पलटूं, मुझे उनसे जवाब-जैसी कोई चीज कभी हासिल नहीं हो सकती— इसलिए नहीं कि प्रयोगात्मक विज्ञानके क्षेत्रकी तरह उत्तरका मेरे सवालसे कोई संबंध नहीं, बल्कि इसलिए कि संपूर्ण शास्त्रकी गति मेरे सवालकी ओर होते हुए भी उसका कोई उत्तर नहीं है और उत्तरकी जगह वही सवाल हमें एक जटिल रूपमें सुनाई पड़ता है।

: ६ :

जीवनके प्रश्नोंके उत्तरकी खोजमें मुझे ठीक वही अनुभव हुआ जो जंगलमें रास्ता भूल जानेवाले आदमीको होता है।

वह जंगलके बीचकी खुली जमीनमें पहुँचता है, किसी वृक्षपर चढ़ जाता है और उसे असीम दूरीतक दिखाई देता है, पर वह देखता है कि उसका घर उधर नहीं है, न हो सकता है। तब वह फिर घने जंगलमें घुस जाता है। यहां उसे अंधेरा दिखता है, पर घर वहां भी नहीं है।

इसी तरह मैं मानवीय ज्ञानके जंगलमें भटकता रहा। गणित तथा प्रयोगात्मक विज्ञानोंकी किरणोंमें मुझे क्षितिज तो साफ-साफ दिखाई देता था, पर उस दिशामें घर नहीं हो सकता था। तब मैं निगूढ़ विज्ञानोंके अंधकार में घुस जाता। मैं जितना ही आगे बढ़ा उतना ही गहरे अंधकारमें फंसता जाता और मुझे विश्वास हो गया कि इससे बाहर निकलनेका रास्ता न है, न हो सकता है।

ज्ञानके प्रकाशमान पक्षकी तरफ झुककर मैंने समझा कि मैं केवल प्रश्नसे अपना ध्यान हटा रहा हूँ। मेरे सामने खुलनेवाला क्षितिज चाहे कितना ही लुभावना क्यों न हो, और उन विज्ञानोंके असीम विस्तारमें प्रवेश करना चाहे कितनाही आकर्षक क्यों न हो, मैं समझ चुका था कि वे जितने ही स्पष्ट और साफ होते हैं उतने ही मेरे लिए बेकार हैं, और उतना ही मेरे प्रश्नका थोड़ा उत्तर देते हैं।

अब मैंने अपनेसे कहा—'मैं जानता हूँ कि विज्ञान इतनी लगनके

साथ किसका शोध करना चाहता है और यह भी जानता हूँ कि उस मार्गपर चलकर मेरे जीवनका क्या प्रयोजन है, इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सकता।' निगूढ़ विज्ञानोंके क्षेत्रमें मैंने समझा कि यद्यपि विज्ञानका सीधा लक्ष्य मेरे प्रश्नका उत्तर देना है, पर इसके बावजूद भी मेरे प्रश्न-का कोई उत्तर नहीं है--सिवाय उस उत्तरके जो मैं स्वयं दे चुका हूँ : "मेरे जीवनका अर्थ क्या है ?" उत्तर : "कुछ नहीं।" "मेरे जीवनका फल क्या होगा ?" उत्तर : "कुछ नहीं।" "जितनी भी चीजें वर्त्तमान हैं, उनका अस्तित्त्व क्यों है, और मेरा अस्तित्त्व क्यों है ?" उत्तर—"क्योंकि अस्तित्त्व है।"

ज्ञानके एक क्षेत्रमें प्रश्न करनेपर मुझे उन बातोंके बारेमें असंख्य परिमाणमें ठीक-ठीक उत्तर प्राप्त हुए जिनके संबंधमें मैंने कुछ नहीं पूछा था—जैसे तारोंके रासायनिक उपकरण, हरक्यूलीज नक्षत्र-समूहकी और सूर्यकी गति, प्राणियों एवं मनुष्यकी उत्पत्ति, ईथरके अत्यंत सूक्ष्म कणोंके रूपके विषयमें। परन्तु ज्ञानके इस क्षेत्रमें मेरे प्रश्न—"मेरे जीवनका तात्पर्य क्या है ?"—का केवल यही उत्तर था कि—"तुम वही हो जिसे तुम अपना 'जीवन' कहते हो; तुम कणोंके एक आकस्मिक और अनित्य संघटन हो। इन कणोंकी पारस्परिक अंत:क्रियायें और तब्दीलियां तुममें वह चीज पैदा करती हैं जिन्हें तुम अपना 'जीवन' कहते हो। यह संघ-टन कुछ समयतक चलता रहेगा। इसके बाद इन कणोंकी अंत:क्रियायें बंद हो जायंगी और जिसे तुम 'जीवन' कहते हो वह भी बंद हो जायगा और साथ ही तुम्हारे सब प्रश्नों का भी अंत हो जायगा। तुम किसी चीजके अकस्मात् जुड़कर बन गए छोटे पिंड हो। इस क्षुद्र पिंड में उबाल आता है। इसीको वह क्षुद्र पिंड अपना 'जीवन' कहता है। पिंड बिखर जायगा, उबाल समाप्त हो जायगा और साथ ही सब प्रश्नोंका भी अंत हो जायगा।" विज्ञानका स्पष्ट पहलू इस तरह उत्तर देता है और अगर वह अपने सिद्धांत पर ठीक-ठीक चले तो इसके सिवा दूसरा उत्तर दे ही नहीं सकता।

इस तरहके उत्तरसे कोई भी आदमी देख सकता है कि इससे प्रश्नका कोई उत्तर नहीं मिलता। मैं अपने जीवनका तात्पर्य जानना चाहता हूँ, पर "यह असीमका क्षुद्र अंश है" इस प्रकारका उत्तर जीवनका कोई अभिप्राय बतानेकी जगह उसके प्रत्येक संभव तात्पर्यको नष्ट कर देता है। प्रयोगात्मक विज्ञानका यह पक्ष निगूढ़ विज्ञानसे जो अस्पष्ट समझौते करता और कहता है कि जीवनका मर्म विकास एवं विकासके साथ सहयोगमें निहित है तब इनकी अयथार्थता और स्पष्टताके कारण इन्हें उत्तर नहीं माना जा सकता।

विज्ञानका दूसरा यानी निगूढ़ पक्ष, जब अपने सिद्धांतोंको दृढ़तापूर्वक पकड़कर चलता है और इस प्रश्नका सीधा जवाब देना चाहता है तो वह सदा यह एक ही जवाब एक ही तरहसे देता है, सब युगोंमें देता रहा है: "जगत् असीम और अचिंत्य है।" मानव-जीवन उस अचिंत्य 'समष्टि'का एक अचिंत्य अंश है, फिर मैं निगूढ़ एवं प्रयोगात्मक विज्ञानोंके उन सब समझौतों या मिश्रणोंको अलग रख देता हूँ जो न्याय, राजनीतिक और ऐतिहासिक नामधारी अर्द्ध- विज्ञानोंके एक पूरे बोझकी सृष्टि करते हैं। इन अर्द्ध-विज्ञानोंमें भी विकास और प्रगतिकी धारणाएं गलत रूपमें उपस्थित की जाती हैं, अंतर केवल इतना होता है कि वहां प्रत्येक वस्तुकी प्रगतिकी बात थी और यहां मनुष्य-जातिके जीवनके विकासकी बात है। इसमें भी भूल पहलेकी तरह ही है: असीममें विकास और प्रगतिका कोई लक्ष्य नहीं हो सकता, और जहांतक मेरे प्रश्नका संबंध है, कोई जवाब नहीं मिलता।

सच्चे निगूढ़ विज्ञानमें यानी सच्चे दर्शन-शास्त्रमें (उसमें नहीं जिसे शापनहार पुस्तकीय तत्त्व-ज्ञान कहता और जो सारी मौजूदा चीजोंको नये दार्शनिक विभागोंमें बांटता है और उन्हें नये-नये नामोंसे पुकारता है), जहां दार्शनिक तात्त्विक प्रश्नकी ओरसे अपनी दृष्टि नहीं हटाता, एक ही उत्तर मिलता है। यह वही उत्तर है जिसे सुकरात, शापनहार, सोलोमन (सुलेमान) और बुद्ध देते रहे हैं।

सुकरात जब मरनेकी तैयारी कर रहा था, तब उसने कहा था—"हम जीवनसे जितनी ही दूर जाते हैं उतना ही सत्यके निकट पहुँचते हैं; क्योंकि हम सत्यके प्रेमी जीवनमें आखिर किस चीजको पानेका प्रयत्न करते हैं? दैहिक जीवनसे पैदा होनेवाली सब बुराइयों तथा स्वयं देहसे मुक्तिकी ही न? अगर यह बात है तो मौतको पास आई देख हम खुश हुए बिना कैसे रह सकते हैं?

"ज्ञानी पुरुष अपनी सारी जिंदगीभर मृत्युकी साधना करता है, इसलिए मृत्यु उसके लिए भयंकर नहीं होती।"

और शापनहार कहता है :

"जगत्की अत्यांतरिक प्रकृतिको 'संकल्प'के रूपमें पहचान लेने और प्रकृतिकी अस्पष्ट शक्तियोंके अचेतन व्यापारसे लेकर मनुष्यके पूर्णतः चैतन्ययुक्त कार्योंतक प्रकृतिके संपूर्ण गोचर पदार्थोंको केवल उस 'संकल्प'-की पादार्थिकता या सरूपता मान लेनेपर उसकी शृंखलासे हम भाग नहीं सकते और हमको मानना पड़ेगा कि स्वेच्छापूर्वक इस संकल्पका त्याग कर देनेपर उसके द्वारा उत्पन्न होनेवाले संपूर्ण गोचर पदार्थोंका भी नाश हो जाता है; उन संपूर्ण अंतहीन एवं अविश्रांत कार्य-परंपराओंका लोप हो जाता है, जिसके अन्दर और जिनके द्वारा संसारका अस्तित्त्व है; एकके बाद एक आनेवाले विविध रूपोंका अन्त हो जाता है और रूपके साथ संकल्पकी संपूर्ण अभिव्यक्तिया भी समाप्त हो जाती हैं और अन्तमें इस अभिव्यक्तिके जागतिक रूपों यानी काल और अवकाश तथा इसके अन्तिम मौलिक रूप चेतना और पदार्थ (आत्मा और भूत) सबका अन्त हो जाता है। जहां 'संकल्प' नहीं है, वहा प्रदर्शन नहीं है और जगत् भी नहीं है। केवल शून्य ही रह जाता है। इस शून्यताकी अवस्था-तक पहुँचनेमें हमारी प्रकृति बाधक होती है। और हमारी प्रकृति वही हमारी 'जीनेकी इच्छा-मात्र है—यही हमारी दुनिया है। हम विनाशसे इतनी घृणा करते हैं या दूसरे शब्दोंमें जीनेकी

इच्छा रखते हैं, यह इस बातका सूचक है कि हम जीवनकी दृढ़ कामना करते हैं। हम इस संकल्पके अतिरिक्त कुछ नहीं हैं और इसके अलावा और कुछ जानते भी नहीं है। इसलिए इस संकल्पके संपूर्ण क्षयके पश्चात् जो कुछ बचता है, वह हमारे-जैसे संकल्पसे भरे हुए लोगोंकेलिए निश्चय ही कुछ नहीं है। पर इसके विरुद्ध जिनके अंदर संकल्प स्वयं क्षय हो गया है, उनकेलिए हमारी यह वास्तविक-सी लगनेवाली दुनिया अपने सम्पूर्ण सूर्यों एव आकाश-गंगाओंके साथ भी, शून्य ही है।"

सुलेमान कहता है--"वृथाभिमानका अभिमान, वृथाभिमानका अभिमान!—सब निस्सार है, वृथाभिमान है! आदमी सूर्यके नीचे जो सारी मेहनत करता है उससे उसे क्या फायदा होता है? एक पीढ़ी जाती है और दूसरी आती है; लेकिन पृथ्वी सदा बनी रहती है....जो चीज पहले रही है, वही आगे भी होगी; जो काम किया गया है, वह वही है जो आगे भी किया जायगा: सूर्यके नीचे (दुनियामें) कोई भी चीज नई नहीं है। क्या कोई ऐसी चीज है जिसे देखकर कहा जा सके—देखो, यह नई है? जो है, वह पुराने जमानेमें पहले ही रह चुकी है। पूव वस्तुओंको कोई याद नहीं करता; आगे जो आवेंगे उनके साथ आनेवाली चीजोंको भी लोग याद नहीं रखेंगे—भूल जायेंगे। मैं उपदेशक एक दिन जरूसलममें इसराइलोंका बादशाह था। और मैंने ज्ञान के सहारे आकाशके नीचेकी वस्तुओंका शोध करनेमें अपना मन लगाया; यह तीव्र वेदना ईश्वरने मनुष्यके उपयोगकेलिए प्रदान की है। दुनियामें जितने काम किये जाते हैं सबको मैंने देखा है; वह सब मिथ्या अहंकार और आत्माके उद्वेगमात्र हैं।...मैंने स्वयं अपने हृदयमें ध्यान लगाया, और कहा—'ओह! मैं बड़ी ऊंची अवस्थामें पहुंच गया हूं और मेरे पहले जरूसलममें जितने लोग हुए उन सबसे अधिक ज्ञान मुझे है। हां, मेरे हृदयको विवेक और ज्ञानका महान् अनुभव है। और मैंने ज्ञान तथा पागलपन और मूर्खताको जाननेमें मन लगाया। पर मैंने अनुभव किया कि यह सब भी आत्मा एव अन्तःकरणका उद्वेग ही है; क्योंकि अधिक ज्ञानमें अधिक

दुःख है। और जो ज्ञानको बढ़ाता है।वह दुःखको भी बढ़ा लेता है।"

मैंने अपने दिलमें कहा —"हटो, चलो, अब मैं प्रफुल्लतासे तुझे सिद्ध करूगा, इसलिए सुख भोगूंगा।' और देखो यह भी मिथ्या अहंकार है। मैंने हंसीके बारेमें कहा : यह पागल है। उल्लासके बारे में कहा : यह क्या कर सकता है ? मैंने अपने मनमें यह देखनेकी कोशिश की कि मैं अपने हाड़-मांसको शराबसे कैसे खुश रख सकता हूँ। मैंने इसकी कोशिश की कि मेरे हृदयमें ज्ञानकी ज्योति जगमगाती रहे और साथ ही मैं बुराइयोंमें प्रवेश करके देखूँ कि मनुष्य जो इतने दिन जीता है तो उसके जीवनकेलिए सबसे अच्छी बात क्या है। मैंने बड़े-बड़े काम किये; मैंने अपनेलिए मकान बनवाये: अंगूरकी खेती की: मैंने बगीचे और उपवन खड़े किये और उनमें तरह-तरह के फलों के वृक्ष लगवाये। बागके वृक्षोंको सींचनेके लिए मैंने नहरें बनवाईं; मैंने दास और दासियां रखीं और खुद अपने मकानमें दास पैदा कराये; पशुओं और चौपायोंका जैसा संग्रह मेरे पास था वैसा मेरे से पहले जरूसलममें कभी देखा नहीं गया था। मैंने राजाओं और बादशाहों तथा सूबोंसे सोना-चांदी,रत्न और आश्चर्य-जनक कोष इकट्ठा किया। मेरे पास गायकों और गायिकाओंकी कमी न थी; सब तरहके वाद्य-यंत्रोंका, जिनसे मानव-जाति आनंद-उपभोग करती है, मेरे पास भंडार था। इस तरह मैं महान् था और मेरे पहले जरूसलममें जितने लोग हुए उन सबसे अधिक वैभव मेरे पास था। तिसपर मेरा विवेक और ज्ञान भी मेरे साथ था ! मेरी आँखोंने जिस चीजकी आकांक्षा की, मैंने उन्हें वही दिया। किसी तरह के सुख-भोगसे मैंने अपने हृदयको वंचित नहीं रखा।...बादमें मैंने अपने उन सब कामोंपर गौर किया; उन सब चीजोंपर ध्यान दिया जिन्हें पानेकेलिए मैंने इतना श्रम किया था। मैंने देखा सब मिथ्या अहंकार और आत्मोद्वेग-मात्र है; इन चीजोंसे कुछ भी लाभ नहीं है। तब मैंने इन परसे अपना मन हटाकर ज्ञान, पागलपन और बुराईको देखनेकी कोशिशकी...पर मैंने अनुभव किया

कि इन सबके साथ एक ही घटना घटित होती है। तब मैंने अपने दिलमें कहा कि मूर्खके साथ भी वही बात होती है और मेरे साथ भी वही बात होती है, तब मैं उससे अधिक बुद्धिमान् किस तरह हूँ? तब मैंने मनमें कहा कि यह भी एक मिथ्या अहंकार ही है; क्योंकि जैसे मूर्खकी सदा याद नहीं रहती वैसे ही बुद्धिमान्‌को भी लोग सदा याद नहीं रखते, भूल ही जाते हैं। आज जो कुछ है वह सब लोग आनेवाले दिनों यानी भविष्यमें भूल जायंगे। और बुद्धिमान् आदमी कैसे मरता है? वैसे ही जैसे मूर्ख मरता है। इसलिए मुझे जीवनसे घृणा हो गई; क्योंकि संसारमें जो कुछ काम है सब दुःखसे पूर्ण है, सब कुछ मिथ्या अहंकार और आत्मोद्वेगमात्र है। बस, मैंने अबतक जो कुछ किया था, जो काम किये थे, उन सबसे मुझे घृणा हो गई; क्योंकि मैं देखता था कि इन सबको अपने बाद आनेवाले आदमीकेलिए मुझे छोड़ जाना होगा।...भला आदमी जो इतना श्रम करता और इतनी परेशानी उठाता है उसमें उसे क्या मिलता है? उसके सारे दिन शोक और दुःखसे भरे हुए हैं; रातमें भी उसके हृदयको कोई विश्राम नहीं मिलता। यह भी मिथ्याभिमान है। मनुष्यके जीवनको इतनी सुरक्षा नहीं दी गई है कि वह खाये, पीये और अपने काम-धामसे अपने हृदयको प्रफुल्ल रखे।...सभी चीजें सब लोगोंके पास एक ही तरहसे आती हैं: पुण्यात्मा और दुष्ट दोनोंके साथ एक ही बात होती है; अच्छे और बुरे, स्वच्छ और अस्वच्छ, त्याग करनेवाले और त्याग न करनेवाले, सज्जन और पापी, कसम खानेवाले और कसमसे डरनेवाले सबकेलिए एक ही बात है। सूर्यके नीचे (दुनियामें) जो कुछ किया जाता है उस सबमें यही दोष है कि सबके साथ एक ही घटना घटित होती है। आह! मानव-पुत्रोंका हृदय बुराइयोंसे भरा हुआ है और जबतक वे जीते हैं उनके हृदयमें पागलपन रहता है और उसके बाद वह मृत्युकी गोदमें चले जाते हैं! जो जीवितोंमें है उनकेलिए आशा है, एक जीवित कुत्ता मरे हुए शेरसे अच्छा है; क्योंकि जीवित जानते हैं कि वे मरेंगे, परन्तु मरे हुओंको कुछ पता नहीं—न उनको कोई पुरस्कार ही मिलता है।

उनकी याद भी भुला दी जाती है। मौतके साथ ही उनके प्रेम, उनकी घृणा, उनके ईर्ष्या-द्वेष सबका अंत हो जाता है। फिर कभी दुनियामें किये जानेवाले किसी काममें उनका कोई हिस्सा नहीं रहता।"

ये सुलेमान अथवा जिसने भी इसे लिखा हो, उसके शब्द हैं।

अब भारतीय ज्ञान भी सुनिये :

शाक्यमुनि एक तरुण और सुखी राजकुमार थे। उनसे बीमारी, बुढ़ापे और मृत्युके अस्तित्त्वकी बात छिपा रखी गई थी। एक दिन वह सैरको निकले और उन्होंने एक अत्यंत जीर्ण बूढ़े आदमीको देखा, जिसके दांत टूट गये थे और मुंहसे फेन निकल रहा था। चूंकि राजकुमारसे तबतक बुढ़ापेका अस्तित्त्व छिपाया गया था, इसलिए उनको यह दृश्य देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपने सारथीसे पूछा—'यह क्या चीज है और इस आदमीकी इतनी बुरी और दुःखदायी हालत क्यों है?' जब उन्हें मालूम हुआ कि सभी मनुष्योंके भागमें यह बात लिखी है और स्वयं उनकी भी अनिवार्यतः वही हालत होगी तो वह आगे सैरको न जा सके। सारथीको घर लौटनेकी आज्ञा दी, जिससे वह इस घटना पर विचार कर सकें। घर लौटकर उन्होंने अपनेको एक कमरेमें बंद कर लिया और घटनापर विचार करने लगे। शायद उन्होंने अपने दिलको किसी तरह समझा-बुझा लिया होगा; क्योंकि बादमें वह फिर प्रफुल्ल और सुखी होकर सैरको निकले। इस बार उनको एक बीमार आदमी दिखाई दिया। इस आदमीका शरीर सूख गया था, वह नीला पड़ रहा था, शरीर कांप रहा था और आंखोंमें अंधेरा छा रहा था। चूंकि राजकुमारसे बीमारीके अस्तित्त्वकी बात छिपाई गई थी, इसलिए उन्होंने इस आदमीको देखते ही रथ रुकवा दिया और पूछा—'क्या बात है?' जब उन्हें मालूम हुआ कि यह बीमारी है जो सभीको होती है और स्वस्थ और प्रसन्न राजकुमार भी कल बीमार पड़ सकते हैं तो वह सैरका आनंद भूल गए। घर लौटनेकी आज्ञा दी और शायद सोच-विचारके बाद अपने मनको किसी तरह सांत्वना देनेमें समर्थ हुए; क्योंकि तीसरे दिन वह फिर तीसरी

बार सैरकेलिए निकले। पर इस बार भी उन्हें एक नया दृश्य दिखाई दिया। उन्होंने देखा कि लोग किसी चीजको कंधे पर रखे लिये जा रहे हैं। पूछा—'यह क्या है?' उत्तर मिला—'मुरदा है।' राजकुमारने सवाल किया—'मुरदा क्या होता है?' उनको बताया गया कि उस आदमी की-सी अवस्थामें हो जाने पर मुरदा कहते हैं। राजकुमार अर्थीके नजदीक गये, कपड़ा हटाया और उसे देखा। पूछा—'अब इसका क्या होगा?' लोगोंने कहा कि अब इसे जलायेंगे। 'क्यों?' क्योंकि अब वह फिर जी नहीं सकता और उसके शरीरसे सिर्फ बदबू और कीड़े पैदा होंगे। 'क्या सब आदमियोंकी यही गति होती है? क्या मेरी भी यही हालत होगी? क्या लोग मुझे भी जला देंगे? क्या मेरे शरीरसे भी बदबू पैदा होगी और उसे कीड़े खायंगे?' उत्तर मिला—हां। राजकुमारने सारथी से कहा—'घर लौटो। मैं फिर कभी मनोरंजनकेलिए सैर-सपाटेको न निकलूंगा।'

तबसे शाक्यमुनिके हृदयमें बेचैनी पैदा हुई। उनको जीवनमें कोई सांत्वना न मिल सकी और उन्होंने निर्णय किया कि जीवन सबसे बड़ी बुराई है। उन्होंने अपनी आत्माकी सारी शक्ति इस बुराईसे मुक्ति पाने और दूसरोंको मुक्त करनेमें और इस चेष्टामें लगा दी कि मृत्युके बाद फिर जीवनका चक्र न चल सके, बल्कि समूल उसका अंत हो जाय। यह भारतीय ज्ञानकी वाणी है।

मानवीय ज्ञान जब जीवनके प्रश्नका उत्तर देता है तब इसी तरहके सीधे उत्तर उससे मिलते हैं।

'दैहिक जीवन बुरा एवं असत् है। इसलिए दैहिक जीवनका नाश ही सुख है और हमें उसीकी कामना करनी चाहिए।' यह शापनहारका कथन है।

'ज्ञान और अज्ञान, वैभव और गरीबी, सुख और दुःख—जो भी दुनियामें है, सब मिथ्याहंकार और पोल है। आदमी मर जाता है और उसका कोई चिन्ह नहीं बचता। कैसी मूर्खता है,' यह सुलेमानका कथन है।

'दुःख, ...र्यतः शक्ति-हीन, वृद्ध तथा मृत्यु होनेकी चेतनाके बीच रहना असंभव है। हमें जीवनसे—सब प्रकारके संभव जीवन-के जालसे छूटना ही होगा', यह बुद्धकी वाणी है।

और इन महापुरुषों एवं चिंतकोंने जो कुछ कहा है उसे लाखों आदमियोंने कहा, सोचा और अनुभव किया है। मैंने भी इसे सोचा और अनुभव किया है।

इस तरह विज्ञानोंके बीच जो सैर मैंने की उससे अपनी निराशासे छूटनेकी जगह मैं उसमें और भी जोरोंके साथ फंसता गया। ज्ञानके एक वर्गने जीवनके प्रश्नका उत्तर ही नहीं दिया; दूसरेने सीधा जवाब दिया और मेरी निराशाको पक्का कर दिया। उसने यह कहनेकी जगह कि जिस नतीजेपर मैं पहुंचा हूँ वह मेरी भूल या मेरे मनकी अस्वस्थ अवस्थाका परिणाम है, उलटे कहा कि मैंने जो सोचा है, ठीक ही सोचा है और मेरे विचार सबसे शक्तिमान् मानवी-मस्तिष्कों द्वारा पहुँचे हुए नतीजोंसे मेल खाते हैं।

अपनेको धोखेमें रखनेसे कोई फायदा नहीं है! यह सब मिथ्या अहंकार है! जो पैदा नहीं हुआ है वही सुखी है—भाग्यवान् है; मृत्यु जीवनसे अच्छी है और आदमीको जीवनसे अवश्य मुक्ति-लाभ करना चाहिए।

: ७ :

जब मुझे विज्ञानके अंदर कोई जवाब नहीं मिला तब मैंने जीवनमें उसकी खोज शुरू की और आस-पासके लोगोंमें ही उसे पा लेनेकी उम्मीद की। मैंने इस बातपर ध्यान देना शुरू किया कि मेरे आस-पासके मेरेही जैसे लोग कैसे जीवन व्यतीत करते हैं और उस प्रश्नके प्रति उनका क्या रुख है जिसने मुझे निराशाके भँवरमें लाकर छोड़ दिया है।

जो लोग मेरे-जैसी स्थितिमें थे यानी जिनकी शिक्षा-दीक्षा और जीवन-प्रणाली मेरे समान थी, उनके बीच मैंने यह जवाब पाया।

मैंने पता लगाया कि मेरे वर्गके आदमी जिस भयानक स्थितिमें थे, उससे निकलनेकेलिए चार रास्ते हैं।

पहला अज्ञानका रास्ता है यानी इस बातको न जानना, न समझना कि जिंदगी एक बुराई और फिजूलकी चीज है। इस तरहके लोग—विशेष रीतिसे स्त्रियां या नवयुवक या बिलकुल कुंदजहन आदमी—अभीतक जिंदगीके उस सवालको समझ नहीं पाये हैं जो शापनहार, सुलेमान और बुद्धके सामने आया था। वे न तो उस अजगरको ही देख रहे हैं जो उनकी बाट जोह रहा है और न उस टहनी काटनेवाले चूहेको ही देख रहे हैं जिनसे वे लटके हुए हैं। वे सिर्फ शहदकी बूंदे चाटते हैं। पर शहदकी बूंदें भी वे थोड़े समयतक चाट पाते हैं; कोई चीज उनका ध्यान अजगर और चूहेकी तरफ जरूर खींचेगी और शहद चाटनेका अंत हो जायगा। ऐसे लोगोंसे मुझे कुछ सीखना नहीं है—आदमी जिस बातको जानता है उसकी ओरसे आँख कैसे मूंद सकता है?

इससे छूटनेका दूसरा मार्ग विषयासक्ति है। इसका मतलब है—जीवनकी व्यर्थताको जानते हुए भी जो कुछ सुविधाएं मिल गई हैं, उनका फिलहाल उपयोग करना और अजगर एवं चूहेकी परवाह न करते हुए अपनी पहुँचमें जितना शहद हो उसे चाटते जाना। सुलेमानने इसी भावको यों व्यक्त किया है—'तब मैंने आनंदका मार्ग ग्रहण किया; क्योंकि आदमीकेलिए दुनियामें खाने-पीने और आनंद मनानेसे बढ़कर और क्या है। ईश्वरने दुनियामें उसे जीनेके जितने दिन दिये हैं, उसमें अगर सुख-भोगका यह क्रम चलता रहे तो फिर और क्या चाहिए?

'इसलिए आनंदसे अपनी रोटी खा और उल्लसित हृदयसे अपनी शराब पी।...जिस पत्नीको अपने मिथ्या अहंकारकी जिंदगीके दिनोंमें तू प्यार करता है उसके साथ सुखपूर्वक रह...क्योंकि दुनियामें तू जो श्रम करता है उसमें तुझे अपने हिस्सेमें यह चीज मिली है। तेरे हाथोंको जो कुछ करनेको मिले उसे अपनी सारी ताकतसे कर; क्योंकि जिस कब्रकी तरफ तू चला जा रहा है उसमें कोई काम, कोई उपाय, कोई ज्ञान नहीं है।

इसी मार्गपर चलकर हमारी श्रेणीके अधिकतर मनुष्य अपनेलिए जीवन संभव बनाते हैं। अपनी परिस्थितिके कारण उन्हें अपने जीवन में कठिनाईकी जगह आराम और सुख-भोग अधिक मिलता है और अपनी नैतिक अंधताकी वजहसे यह भूल जाते हैं कि उनकी स्थितिने जो सुविधा दिला रखी है वह आकस्मिक है और सुलेमानकी तरह हर आदमीको हजार पत्नियां और महल नहीं मिल सकते। वे यह भी भूल जाते हैं कि हर ऐसे आदमीके बदले, जिसके पास हजार औरतें हैं, हजार आदमी बिना औरतके ही रह जाते हैं और हरमहलको बनाने-में हजार आदमियोंको पसीना बहाकर काम करना पड़ता है और जिस घटना-चक्रने आज मुझे सुलेमान बना दिया है वही कल मुझे सुलेमानका दास भी बना सकता है। चूंकि इन आदमियोंकी कल्पना-शक्ति बिलकुल कुंठित हो चुकी होती है, इसलिए वे उन बातोंको भुला सकते हैं, जिनके कारण बुद्धको शांति नहीं मिलती थी—यानी उस अनिवार्य बीमारी, बुढ़ापे और मौतको वे भूल जाते हैं, जो आज या कल इन सब सुखोंका अंत कर देगी।

हमारे जमानेके और हमारी तरह जिंदगी बितानेवाले अधिकतर आदमी इसी तरह सोचते और अनुभव करते हैं। यह ठीक है कि इनमें से कुछ लोग अपने कठिन विचारों और कल्पनाओंको एक तत्त्व-ज्ञानके रूपमें घोषित करते हैं और उसे 'निश्चयात्मक' (पॉजिटिव) नाम देते हैं; पर मेरी सम्मतिमें, इसके कारण वे उन लोगोंके झुंडसे अलग नहीं किये जा सकते, जो प्रश्नको दृष्टिसे ओट करनेकेलिए, शहद चाटते हैं। मैं इन आदमियोंकी नकल नहीं कर सकता, और उनकी जैसी मंद कल्पना न होनेके कारण मैं उनकी तरह इसे बनावटी तौरपर अपने अंदर पैदा भी नहीं कर सकता। मैं अजगर और चूहेसे अपनी आंखें हटा नहीं सकता; कोई चेतनाधारी मनुष्य एक बार उन्हें देख लेनेके बाद ऐसा नहीं कर सकता।

पलायनका तीसरा रास्ता बल और शक्तिका है। इसके मानी यह

हैं कि जब आदमी समझ ले कि जीवन केवल एक बुराई और निरर्थक-सी वस्तु है तब उसे नष्ट कर दे। कुछ असाधारण रूपसे शक्तिमान् और दृढ़ व्यक्ति ही ऐसा करते हैं। अपने साथ जो मजाक किया गया है उसकी निरर्थकता समझ लेने और जीनेसे मर जाना अच्छा है तथा अस्तित्त्व न रखना सबसे अच्छा है, यह जान लेनेके बाद वे इस मूर्खता-पूर्ण मजाकका खात्मा कर देते हैं—क्योंकि खात्मा करनेके साधन भी मौजूद हैं; गलेके चारों ओर रस्सीका फंदा, पानी, कलेजेमें घुसेड़ लेनेके लिए छुरा, रेलपर चलनेवाली गाड़ियां। हममेंसे जो लोग ऐसा करते हैं उनकी संख्या बढ़ती ही जाती है। इनमेंसे अधिकतर अपने जीवनके सबसे अच्छे कालमें, जब उनके मनकी शक्ति खूब विकसित होती है और मनुष्यके मनको विकृत और पतित करनेवाली आदतें भी उनमें बहुत कम होती हैं, ऐसा करते हैं।

मैंने देखा कि पलायनका यही सबसे अच्छा उपाय है और मैंने इसे ही ग्रहण करनेकी इच्छा की।

एक चौथा उपाय और है; पर वह दुर्बलताका उपाय है। मनुष्य परिस्थितिकी सच्चाईको देखते हुए भी जीवनसे चिपटा रहता है—यद्यपि वह पहलेसे ही यह जानता है कि इससे कोई चीज हाथ नहीं आनी है। वह जानता है कि मौत जिंदगीसे बेहतर है; पर बुद्धिमत्तापूर्वक आचरण करनेकी, जल्दी इस धोखा-धड़ीको खत्म करने और अपनेको मार डालने की, ताकत न होनेके कारण वह किसी चीजकी प्रतीक्षा करता हुआ मालूम पड़ता है। यह दुर्बलतापूर्ण पलायन है, क्योंकि जब मैं जानता हूँ कि सर्वोत्तम उपाय क्या है और उसे करना मेरे बसकी बात है तब उसे क्यों न किया जाय? मैंने अपनेको इसी वर्गमें पाया।

इन चार उपायोंसे मेरी श्रेणीके मनुष्य भयंकर परस्पर विरुद्ध बातों-से दूर भागते हैं। मैंने बहुत सोचा-विचारा; पर इन चार उपायोंके अलावा मुझे कोई दूसरा मार्ग नहीं दिखाई दिया। एक उपाय यह था—जीवन मूर्खतापूर्ण, मिथ्या अहंकार और बुराई है और जिंदा न रहना बेहतर

है; यह ज्ञान ही न हो। पर मैं इस ज्ञानसे रहित न रह सका और जब एक बार यह ज्ञान हो गया तब उससे आँखें कैसे बंद कर सकता था? दूसरा उपाय यह था—बिना भविष्यका विचार किये जैसा भी जीवन है, बिताया जाय। मैं ऐसा भी नहीं कर सकता था। शाक्यमुनिकी तरह जानते हुए कि बुढ़ापा, बीमारी और मौतका अस्तित्त्व है, मैं सैर-शिकारको नहीं जा सकता था। मेरी कल्पना बड़ी प्रबल थी। मैं उन आकस्मिक क्षणोंमें भी प्रसन्नता नहीं अनुभव कर पाता था जो पलभरकेलिए मेरे सामने सुखके टुकड़े फेंक देते थे। तीसरा उपाय यह था कि इस बातको समझ लेनेके बाद कि जिंदगी एक बुराई और बेवकूफीसे भरी हुई चीज है, अपनेको मारकर उसका खात्मा कर देता। मैं जीवनकी व्यर्थता समझता था फिर भी किसी वजहसे आत्म-हत्या मैंने नहीं की। चौथा उपाय है—सुलेमान और शापनहारकी तरह रहनेका—यह जानते हुए कि जिंदगी हमारे साथ किया गया एक मजाक है, जीवन बिताने, नहाने-धोने, खाने-पहनने, बात करने और किताबें लिखने का! मेरे लिए यह घृणाजनक और दुखदायी था। लेकिन मैं उस स्थितिमें बना रहा।

आज मैं देखता हूँ कि मैं आत्म-हत्या नहीं कर सका, इसका कारण अपने विचार भ्रम-पूर्ण होनेकी धुंधली चेतना थी। अपनी तथा विद्वानों-की वह विचार-प्रणाली चाहे कितनी ही विश्वसनीय और संदेह-रहित मालूम पड़ी हो जिसने मुझे जीवनकी व्यर्थता स्वीकार करनेपर विवश किया, पर इस परिणामके औचित्यके संबंधमें मेरे अंदर एक धुंधला संदेह बना ही रहा।

यह संदेह कुछ इस तरहका था: मैं अर्थात् मेरी बुद्धिने मान लिया कि जीवन व्यर्थ है। अगर बुद्धिसे ऊंची कोई चीज नहीं है (और है भी नहीं; कोई चीज सिद्ध नहीं कर सकती कि इससे ऊंची वस्तु है), तब मेरे-लिए बुद्धि ही जीवनकी सृष्टि करनेवाली है। अगर बुद्धिके अस्तित्त्वका लोप हो जाय तो मेरेलिए जीवन भी न रहेगा। पर बुद्धि जीवनसे इंकार कैसे कर सकती है, जब वह स्वयं जीवनकी सृष्टि करनेवाली है? या इसे

दूसरी तरह कहें : अगर जीवन न होता तो मेरी बुद्धिका अस्तित्त्व भी न होता, इसलिए बुद्धि जीवनकी संतान है। जीवन ही सब कुछ है। बुद्धि उसका फल है, फिर भी बुद्धि स्वयं जीवनको अस्वीकार करती है। मैंने अनुभव किया कि इसमें कोई-न-कोई गलती है।

मैंने अपनेसे कहा---यह ठीक है कि जीवन एक व्यर्थकी बुराई है। फिर भी मैं जीता रहा हूँ और अब भी जी रहा हूँ; सारी मानव-जाति जीती रही है और जी रही है। यह कैसी बात है? जब जीना असंभव है, तब फिर वह क्यों जीती है? क्या सिर्फ मैं और शापनहार ही इतने बुद्धिमान् हैं कि जीवनकी व्यर्थता और बुराईको समझते हैं?

जिस तर्कसे जीवनका मिथ्या अहंकार सिद्ध होता है वह बहुत कठिन नहीं है और बिलकुल सीधे-सादे लोग दीर्घकालसे उसे जानते हैं; फिर भी वे जीते रहे हैं और आज भी जी रहे हैं। फिर क्या कारण है कि वे सब जीते रहते हैं और कभी जीवनके औचित्यमें संदेह करनेकी बात नहीं सोचते?

ऋषियोंके विवेकसे पुष्ट मेरे ज्ञानने मुझे बताया है कि पृथ्वीपर रहनेवाली प्रत्येक वस्तु---शरीरी और अशरीरी---अत्यंत चतुराईके साथ एक व्यवस्था और शृंखलामें पिरोई हुई है, केवल मेरी ही स्थिति हास्यास्पद है। और उन 'मूर्खों'को--विस्तृतजन-समूहको इस बातका कुछ ज्ञान नहीं है कि जगत्‌की प्रत्येक शरीरी और अशरीरी वस्तुमें किस प्रकारसे एक क्रमका विधान है। फिर भी वे जी रहे हैं और उन्हें मालूम पड़ता है कि उनका जीवन बड़ा बुद्धिमत्तापूर्ण है।

मेरे मनमें विचार उठा कि 'कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं किसी वस्तुको अभीतक न जानता होऊं? अज्ञान ठीक इसी रूपमें अपना कार्य करता है। वह सदैव ठीक वही बात कहता है जो मैं कह रहा हूँ। जब वह किसी वस्तुको नहीं जानता तब वह यह कहता है कि जो कुछ मैं नहीं जानता वह सब मूर्खतापूर्ण है। स्पष्टतया सारा-का-सारा मानव-समाज युग-युग से जीता रहा है और आज भी इस तरह जी रहा है मानो उसने

अपने जीवनका अर्थ समझ लिया हो; क्योंकि बिना यह समझे वह जी नहीं सकता; किंतु मैं कहता हूँ कि यह सब जीवन निरर्थक है और मैं जी नहीं सकता।

'आत्म-हत्या द्वारा जीवनको समाप्त करनेसे हमें कोई चीज नहीं रोकती। तब अपनेको मार डालो और बहस मत करो। यदि जीवन तुम्हें दुखी करता है तो अपनी हत्या कर लो! तुम जीते हो, और फिर भी जीवनके तात्पर्यको समझ नहीं सकते तो इस जीवनका अंत कर दो; और जीवनमें आत्म-वंचना करते तथा उन बातोंको कहते और लिखते हुए न फिरो जिसे तुम स्वयं समझनेमें असमर्थ हो। तुम एक अच्छे समाजमें पैदा हुए हो, जिसमें लोग अपनी स्थितिसे संतुष्ट हैं और जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं। यदि तुम इसे निरानंद और घृणाजनक पाते हो तो इसे छोड़कर चल दो!'

वस्तुत: हमारे-जैसे लोग जो आत्म-हत्याकी आवश्यकता अनुभव करते हैं, फिर भी आत्म-हत्या करने का निश्चय नहीं कर पाते, अवश्य ही सबसे दुर्बल, अस्थिर और स्पष्ट शब्दोंमें सबसे मूर्ख आदमी हैं और उन मूर्खोंकी तरह अपनी मूर्खताका प्रदर्शन करते फिरते हैं, जो एक चित्रित पापिनीके विषयमें प्रलाप करते हैं। कारण हमारी बुद्धि और हमारा ज्ञान चाहे कितना ही संदेह-रहित हो; किंतु उसने हमें अपने जीवनका अर्थ समझनेकी शक्ति नहीं दी। परंतु समग्र मानव-जातिके करोड़ों-अरबों लोग अपना जीवन जीते हैं और उन्हें जीवनके अर्थके विषयमें कोई संदेह नहीं रहता।

अत्यंत प्राचीन कालसे, जिसके बारेमें हमें कुछ भी जानकारी है, जब जीवनका आरंभ हुआ तबसे जगत्में मनुष्य जीवनकी व्यर्थताका तर्क जानते हुए भी जीते रहे हैं—वही तर्क जिसने मुझे जीवनकी निरर्थकता बतलाई है—परन्तु वे जीवनके कुछ अर्थ प्रदान करके जीते रहे हैं।

जबसे मानव-जीवनका आरंभ हुआ तबसे ही मनुष्योंको जीवनके अर्थका भी पता रहा है और वे वही जीवन बिताते रहे हैं जो आज मेरे

पास आया है। जो कुछ मेरे अंदर और मेरे आसपास हैं, सब शरीरी और अशरीरी वस्तुएं, उन्हींके जीवन-ज्ञानका परिणाम हैं। विचारकी जिस प्रणालीसे मैं इस जीवनके विषयमें चिंतन करता और उसका तिरस्कार करता हूँ, उसका आविष्कार मैंने नहीं बल्कि उन्होंने किया था। यह भी उन्हींकी कृपा है कि मैं पैदा हुआ, पढ़ाया-लिखाया गया और इस प्रकार विकसित हुआ। उन्होंने ही जमीन खोदकर लोहेका पता लगाया, उन्होंने ही जंगलोंको काटकर साफ करना सिखलाया, गायों और घोड़ोंका पालन करना सिखलाया, उन्होंने ही हमें बतलाया कि खेतमें अन्न किस प्रकार बोना चाहिए और हम मिल-जुलकर किस प्रकार रह सकते हैं। उन्होंने हमारे जीवनको संगठित किया और मुझे सोचना और बोलना सिखलाया। और मैं, उन्हींको संतति उन्हींद्वारा पालित-पोषित, उन्हींद्वारा ज्ञान प्राप्तकर और उन्हींके विचारों और शब्दोंका अपने चिंतनमें उपभोग करते हुए, तर्क करता हूँ कि वे मूर्ख और निरर्थक थे! तब मैंने अपने मनमें कहा कि 'कहीं-न-कहीं अवश्य कोई गलती हो रही है और मैं कुछ भूल अवश्य कर रहा हूँ।' लेकिन वह गलती कहां है और क्या है इसका पता मुझे बहुत बाद में चला।

: ८ :

ये सब संदेह, जिन्हें आज मैं थोड़े-बहुत रूपमें प्रकट करनेमें समर्थ हुआ हूँ उस समय व्यक्त नहीं कर सकता था। उस समय तो मैं इतना ही अनुभव करता था कि जीवनके मिथ्या अहंकारके संबंधमें मेरे निष्कर्ष तर्ककी दृष्टिसे चाहे कितनेही अनिवार्य जान पड़ते हों और संसारके महान् विचारकोंद्वारा उनको चाहे कितना ही समर्थन प्राप्त हुआ हो, किंतु उनमें कोई-न-कोई गलती अवश्य है। यह गलती स्वयं उस तर्क-प्रणालीमें है अथवा प्रश्नके वक्तव्यमें है. यह मैं नहीं जानता था। मैं इतना ही अनुभव करता था कि जिस नतीजेपर मैं पहुँचा हूँ वह तर्ककी दृष्टिसे

विश्वसनीय है; किंतु इतना ही पर्याप्त नहीं है। ये सब निष्कर्ष मुझे इतना विश्वास नहीं दिला सके कि मैं अपने तर्कके अनुसार आचरण भी करूं अर्थात् अपनी हत्या कर लूं। और यदि अपनी हत्या किये बिना ही मैं कहता कि बुद्धिसे मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ तो यह एक झूठी बात होती। बुद्धि और तर्क अपना काम कर रहे थे, लेकिन कोई और चीज भी अंदर-ही-अंदर क्रियाशील थी, जिसे मैं जीवनकी चेतनाके नामसे ही पुकार सकता हूँ। मेरे अंदर एक शक्ति काम कर रही थी जो बरबस मेरा ध्यान इस तरफ खींच रही थी; और यही वह शक्ति थी जिसने मुझे मेरी निराशापूर्ण स्थिति से उबारा और एक बिलकुल ही दूसरी दिशामें मेरा मन फेर दिया। इस शक्तिने मुझे इस तथ्यकी ओर ध्यान देनेको मजबूर किया कि मैं और मेरे-जैसे कुछ थोड़े और आदमियोंतक ही मानव-जाति सीमित नहीं है और अभीतक मैं मानव-जीवनका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका हूँ।

अपने वर्गके लोगोंकी संकुचित परिधिमें मैंने देखा कि उनमें ऐसे ही लोग हैं जिन्होंने या तो इस प्रश्नको समझा ही नहीं है यदि समझा भी है तो उसे जीवनके नशेमें भुला दिया है, अथवा समझकर अपने जीवनका अंत कर दिया है, अथवा इसे समझा तो है, किंतु अपनी दुर्बलताके कारण वे निराशापूर्ण जीवनके दिन बिता रहे हैं। इसके सिवा मुझे दूसरे लोग दिखलाई न पड़ते थे। मुझे ऐसा मालूम पड़ता था कि धन-वान, शिक्षित और निठल्ले लोगोंके इस संकुचित समाजतक—जिसमें मैं भी शामिल था—ही सारी मनुष्य-जाति का खात्मा हो जाता है, और वे करोड़ों आदमी, जो इस छोटे समाजके बाहर रहकर जीवन बिताते रहे हैं और आज भी बिता रहे हैं एक प्रकारके पशु हैं—वे असली आदमी नहीं हैं।

यद्यपि इस समय यह बात अविश्वसनीय रूपसे अचिंत्य मालूम होती है कि मैं जीवनके विषयमें तर्क करते हुए भी अपने चारों ओरके संपूर्ण मानव-जीवनको भूल जाता था और यह समझनेकी भूल कर बैठता था

ः मेरा तथा सुलेमान और शापनहारका जीवन ही सच्चा जीवन है और
रोड़ों मनुष्योंका जीवन ध्यान देने लायक नहीं—पर उस समय सचमुच
ही बात थी। अपनी बुद्धिके अहंकार और आत्म-वंचनामें मुझे यह बात
संदिग्ध मालूम पड़ती थी कि मैंने एव सुलेमान और शापनहारने
विनके इस सवालको ऐसे सच्चे और उचित रूपमें रखा है कि उसके
तिरिक्त और कुछ भी संभव नहीं है। यह बात मुझे इतनी असंदिग्ध
तीत होती थी कि अपने चारोंओर फैले हुए उन करोड़ों आदमियोंके
विनके विषयमें कभी मेरे मनमें एक बार भी यह प्रश्न नहीं उत्पन्न
आ कि 'जो कोटि-कोटि व्यक्ति दुनियामें जीते रहे हैं और जी रहे हैं
न्होंने अपने जीवनका क्या अर्थ समझा था तथा समझा है?'

मैं बहुत दिनोंतक पागलपनकी इस अवस्थामें रहा जो हम अत्यंत
दार और सुशिक्षित आदमियोंका औसत स्वभाव प्रकट करती है।
न्तु सच्चे श्रमिकोंकेलिए मेरे हृदयमें जो स्नेह है, उसने मुझे उनकी
ार ध्यान देने और समझनेकेलिए विवश किया कि वे उतने मूर्ख
हीं हैं जितना हमने मान रखा है। इस वृत्तिके कारण अथवा अपने
श्वासकी इस सचाईके कारण कि अपनी हत्या कर देनेके अतिरिक्त मैं
ौर कुछ जाननेमें असमर्थ हूँ, मैंने आंतरिक प्रेरणावश यह अनुभव
या कि यदि मैं जीना और जीवनका अर्थ समझना चाहता हूँ तो
झे उन लोगोंमें इसकी खोज नहीं करनी चाहिए जिन्होंने इसे खो दिया
अथवा जो अपनी हत्या करना चाहते है, बल्कि भूत और वर्तमान
ालके उन करोड़ों आदमियोंमें उसकी खोज करनी चाहिए जो जीवनका
र्माण करते हैं और जो न केवल अपनी जिंदगीका बोझ उठाते हैं;
ल्कि हमारे जीवनका बोझ भी अपने कंधोंपर ले लेते हैं! तब मैंने उन
ु-संख्यक सरल, अशिक्षित और गरीब लोगोंके जीवनपर विचार करना
ारंभ किया जो जीवन जी चुके हैं अथवा आज भी जी रहे हैं। मैंने एक
ाकुल ही नई बात देखी। मैंने देखा कि थोड़े अपवादोंको छोड़कर ये
ोड़ों आदमी, जो जीवन जी चुके अथवा जी रहे हैं, मेरी पूर्व-निश्चित

श्रेणियोमें नहीं बांटे जा सकते। मैं उन्हें न तो उन आदमियोंकी श्रेणीमें रख सकता हूँ, जो प्रश्नको नहीं समझते; क्योंकि वे स्वयं उसे उपस्थित करते हैं और असाधारण स्पष्टताके साथ उसका उत्तर देते हैं। मैं उन्हें विषयासक्त भी नहीं मान सकता; क्योंकि उनके जीवन में सुख-भोग की अपेक्षा दुःख-कष्ट-भोग ही अधिक है। इनकी गिनती मैं उन लोगोंमें तो कर ही नहीं सकता जो अविवेकपूर्वक अपने अर्थ-हीन जीवनका भार ढो रहे हैं; क्योंकि वे अपने जीवनके हरएक काम और मौततककी व्याख्या कर लेते हैं। आत्म-हत्याको वे सबसे बड़ा पाप समझते हैं। तब मुझपर यह प्रकट हुआ कि सारी मानव-जातिको जीवनके अर्थका ज्ञान था, पर जिसे मैं स्वीकार न करता था और उससे घृणा करता था। मुझे यह भी मालूम पड़ा कि तार्किक ज्ञान जीवनका अर्थ बितानेमें असमर्थ है; वह जीवनको बहिष्कृत करता है। उधर करोड़ों आदमी—सारा मनुष्य-समाज—जीवनका जो अर्थ लगाते हैं वह एक प्रकारके तिरस्कृत मिथ्या-ज्ञानपर आश्रित है।

पंडितों और विद्वानोंका तर्क-सम्मत ज्ञान जीवनका कोई अर्थ अस्वीकार करता है, परन्तु मनुष्योंकी बहुत बड़ी संख्या, करीब-करीब सारी मनुष्य-जाति, इस अर्थको अतार्किक ज्ञानमें प्राप्त करती है। और यह अतार्किक ज्ञान ही श्रद्धा है—वह वस्तु जिसे मैं अस्वीकार किये बिना रह नहीं सकता था। यह ईश्वर है, यह त्रिमूर्तिमें एक है, यह छः दिनोंमें सृष्टि करनेके समान है। पर इन सब बातोंको मैं उस वक्ततक स्वीकार नहीं कर सकता जबतक मुझमें बुद्धि है।

मेरी स्थिति बड़ी भयंकर थी। मैं जा चुका था कि तार्किक ज्ञान के मार्गपर चलकर तो मैं जीवनकी अस्वीकृतिके सिवाय और कुछ प्राप्त नहीं कर सकता; और उधर श्रद्धाके पक्षमें बुद्धिकी अस्वीकृतिके सिवा दूसरी कोई बात नहीं थी जो मेरेलिए जीवनकी अस्वीकृतिकी अपेक्षा कहीं असंभव थी। तार्किक ज्ञानसे तो यह प्रकट होता था कि जीवन एक बुराई है, और लोग इसे जानते हैं कि न जीना स्वयं उन्हीं पर निर्भर है;

फिर भी उन्होंने अपने जीवनके दिन पूरे किये और आज भी वे जी रहे हैं। स्वयं मैं जी रहा हूँ, यद्यपि बहुत दिनोंसे मुझे इस बातका ज्ञान है कि जीवन अर्थ-हीन और एक दूषण है। श्रद्धा-द्वारा यह प्रकट होता है कि जीवनका अर्थ समझनेकेलिए मुझे अपनी बुद्धिका तिरस्कार करना चाहिए—उसी वस्तुका जिसकेलिए जीवनका अर्थ जाननेकी आवश्यकता है।

: ६ :

इस प्रकार जो संघर्ष और परस्पर-विरोधी स्थिति पैदा हुई उससे निकलनेके दो मार्ग थे। या तो यह कि जिसे मैं बुद्धि कहता हूँ वह इतनी तर्क-संगत नहीं है जितनी मैं माने बैठा हूँ; अथवा यह कि जिसे मैं अबौद्धिक और अतार्किक समझता हूँ वह इतना अबौद्धिक और तर्क-विरोधी नहीं है जितना मैं समझता हूँ। तब मैं अपने तार्किक ज्ञानकी तर्क-प्रणालीपर विचार और उसकी छान-बीन करने लगा।

अपने बौद्धिक ज्ञानकी तर्क-प्रणालीपर विचार करनेपर मुझे वह बिलकुल ठीक मालूम हुई। यह निष्कर्ष अनिवार्य था कि जीवन शून्यवत् हैं; किंतु मुझे एक भूल दिखाई पड़ी। भूल यह थी कि मेरा तर्क उस प्रश्नके अनुरूप नहीं था जो मैंने उपस्थित किया था। प्रश्न था—'मैं क्यों जीऊं अर्थात् मेरे इस स्वप्नवत् क्षणिक जीवनसे क्या वास्तविक और अस्थायी परिणाम निकलेगा; इस असीम जगत्में मेरे सीमित अस्तित्वका प्रयोजन क्या है?' इसी प्रश्नका जवाब देनेकेलिए जीवनका अध्ययन किया था।

जीवनके सब संभव प्रश्नोंके हल मुझे संतुष्ट न कर सके; क्योंकि मेरा सवाल यद्यपि यों देखनेमें सीधा-सादा था; परन्तु इसमें सीमित वस्तुको असीमके रूपमें और असीमको सीमित वस्तुके रूपमें समझनेकी मांग भी शामिल थी।

मैंने पूछा—'काल, कारण और आकाशके बाहर मेरे जीवनका क्या अर्थ है ?' और मैंने इस प्रश्नका यों उत्तर दिया—'काल, कारण और आकाशके भीतर मेरे जीवनका क्या अर्थ है ?' बहुत सोच-विचारके बाद मैं यही उत्तर दे सका कि कुछ नहीं।

अपने तर्कोंमें मैं बराबर सीमितकी सीमितके साथ और असीमकी असीमके साथ तुलना करता रहा। इसके सिवा मैं कर ही क्या सकता था ? इसी तर्कके कारण मैं इस अनिवार्य निष्कर्षपर पहुंचा—शक्ति शक्ति है, पदार्थ पदार्थ है, संकल्प संकल्प है, असीम असीम है, शून्य शून्य है—इस रीतिसे इसी परिणामपर पहुंचना संभव था।

यह बात कुछ वैसी ही थी जैसी गणितके क्षेत्रमें उस समय होती है जब हम किसी समीकरणको हल करनेका विचार करते हुए यह देखते हैं कि हम समान संख्याओंको ही हल कर रहे हैं। यह तर्क-प्रणाली तो ठीक है; लेकिन उत्तरमें इसका परिणाम यह निकलता है कि 'क' 'क' के बराबर है या 'ख' 'ख' के बराबर है या 'ग' 'ग' के बराबर है। अपने जीवनके अर्थवाले प्रश्नके विषयमें तर्क करते समय भी मेरे साथ यही बात हुई। सब प्रकारके विज्ञानोंद्वारा इस प्रश्नका एक ही उत्तर मिला।

और सच तो यह है कि वैज्ञानिक ज्ञान—यह ज्ञान जो डिकार्टेकी भांति प्रत्येक वस्तुके विषयमें पूर्ण संदेहके साथ शुरू होता है, श्रद्धा द्वारा स्वीकृत सब प्रकारका ज्ञान अस्वीकार करता है और प्रत्येक वस्तुका बुद्धि, तर्क और अनुभवके नियमोंके आधारपर नवीन रूपसे निर्माण करता है, और जीवनके प्रश्नके विषयमें उनके अलावा और कोई जवाब नहीं दे सकता जो मैं पहले ही प्राप्त कर चुका या अर्थात् एक अनिश्चित उत्तर। शुरू-शुरूमें तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ था कि विज्ञानने मुझे एक निश्चयात्मक उत्तर दिया है—वह उत्तर जो शापेनहारने दिया था यानी जीवनका कोई अर्थ नहीं है और यह एक बुराई है। किंतु इस विषयकी भली-भांति परीक्षा करनेपर मैंने देखा कि यह उत्तर निश्चयात्मक नहीं है, केवल मेरी अनुभूतिने उसे इस रूपमें प्रकट किया है। ठीक-तौरसे उसे

व्यक्त किया जाय—जैसा कि ब्राह्मणों, सुलेमान और शापनहारने व्यक्त किया है—तो जवाब अनिश्चित अथवा एक-सा मिलता है—वही 'क' बराबर 'क' अथवा जीवन कुछ नहीं है। इस प्रकार यह दार्शनिक ज्ञान किसी वस्तुको अस्वीकार तो नहीं करता; किंतु यह उत्तर देता है कि यह प्रश्न हल करना उसकी शक्तिके बाहर है और उसकेलिए हल अनिश्चित ही रहेगा।

इसे समझ चुकनेके बाद मैंने यह देखा कि तार्किक ज्ञानके द्वारा अपने प्रश्नका कोई उत्तर खोज निकालना संभव नहीं है, और तार्किक ज्ञानके द्वारा मिलनेवाला उत्तर केवल इस बातका सूचक है कि इस प्रश्नका उत्तर प्रश्नके एक भिन्न वक्तव्यकेद्वारा, और तभी प्राप्त हो सकता है जब उसमें असीमके साथ ससीमका संबंध शामिल कर लिया जाय। और मैंने समझा कि श्रद्धा एवं विश्वासद्वारा मिलनेवाला उत्तर चाहे कितना ही तर्कहीन और विकृत हो, किंतु उसमें ससीमके साथ असीमके संबंधकी भूमिका होती है जिसके बिना कोई हल संभव नहीं है।

मैंने जिस रूपमें भी इस सवालको रखा; यह असीम और ससीमके बीचका संबंध उत्तरमें अवश्य प्रतिध्वनित हुआ। मुझे किस प्रकार रहना चाहिए? ईश्वरीय नियमोंके अनुसार। मेरे जीवनसे क्या वास्तविक परिणाम निकलेगा? अनंत कष्ट वा अनंत आनंद। जीवनमें जीवनका वह कौन-सा अर्थ है जिसे मृत्यु नष्ट नहीं करती?—अनंत प्रभुके साथ संमिलन स्वर्ग।

इस प्रकार उस तार्किक या बौद्धिक ज्ञानके अलावा, जिसे मैं ज्ञानकी इति समझता था, अनिवार्य रूपसे मुझे स्वीकार करनेकेलिए बाध्य होना पड़ा कि समस्त जीवित मानवताके पास एक दूसरे प्रकारका ज्ञान—अतार्किक ज्ञान—भी है जिसे श्रद्धा कहते हैं और जो मनुष्यका जीना संभव करती है। अब भी यह श्रद्धा मेरेलिए उसी प्रकार अबौद्धिक है जैसे यह पहले प्रतीत होती थी, पर अब मैं यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि सिर्फ इसीके जरिये मनुष्य-जातिको जीवनके इस प्रश्नका

उत्तर मिल सकता है और इसलिए इसीके कारण जीवन संभव है। ज्ञानने हमें यह स्वीकार करनेको विवश किया था कि जीवन अर्थहीन है। उसकी वजहसे हमारी जिंदगीमें रुकावट पैदा हो गई थी और मैं अपना अंत कर देना चाहता था। पर इसी बीच मैंने अपने चारों तरफ फैली मनुष्य-जातिपर निगाह डाली और देखा कि लोग जीते हैं और घोषित भी करते हैं कि उनको जीवनका अर्थ मालूम है। मैंने अपनी तरफ देखा। मैंने अभीतक अपने अंदर जीवन-प्रवाहका अनुभव किया था जबतक मुझे जीवनके किसी अर्थका ज्ञान था। इस तरह न सिर्फ दूसरोंके-लिए, बल्कि मेरेलिए भी श्रद्धाने जीवन सार्थक कर दिया और जीना संभव हुआ।

जब मैंने दूसरे देशोंके लोगों, अपने समकालिकों और उनके पूर्वजों-पर ध्यान दिया तो वहां भी मुझे यही बात दिखाई पड़ी। जबसे पृथ्वीपर मनुष्यका जन्म हुआ तबसे जहां-कहीं भी जीवन है मनुष्य इस श्रद्धाके कारण ही जी सका है और इस श्रद्धाकी प्रधान रूप-रेखा सब जगह मिलती है और सदा एक रहती है।

श्रद्धा चाहे कुछ हो, वह चाहे जो उत्तर देती हो और चाहे जिन्हें वह उत्तर दे; पर उसका प्रत्येक उत्तर मनुष्यके सीमित अस्तित्वको एक अर्थ प्रदान करता है—वह अर्थ जिसका कष्ट, विपत्ति और मृत्युसे अंत नहीं होता। इसका मतलब यह है कि सिर्फ श्रद्धामें ही हम जीवनके-लिए एक अर्थ और एक संभावना प्राप्त कर सकते हैं। तब, यह श्रद्धा क्या है? विचार करके मैंने समझा कि श्रद्धा 'अदृश्यकी साक्षी' मात्र नहीं है, सिर्फ दैवी प्रेरणा ही नहीं है (इससे श्रद्धाका एक निर्देश-मात्र होता है), सिर्फ ईश्वरके साथ मनुष्यका संबंध ही नहीं है (पहले आदमी-को श्रद्धाकी और फिर ईश्वरकी परिभाषा करनी पड़ती है, ईश्वरके द्वारा श्रद्धा की नहीं); यह सिर्फ उन बातोंको मान लेना ही नहीं हैं जो बताई गई हों यद्यपि श्रद्धाका आमतौरपर यही मतलब लिया जाता है); श्रद्धा तो मानव-जीवनके प्रयोजनका वह ज्ञान है जिसके फलस्वरूप मनुष्य

अपना नाश नहीं करता; बल्कि जीता है। श्रद्धा जीवनका बल है। अगर कोई आदमी जीता है तो वह किसी-न-किसी वस्तुसे श्रद्धा रखता है। यदि उसमें श्रद्धा नहीं है कि किसी चीजकेलिए उसे जीना चाहिए तो वह जी न सकेगा। यदि वह ससीमकी मिथ्या प्रकृतिको नहीं देख और पहचान पाता तो वह ससीममें विश्वास करता है, यदि वह ससीमकी मिथ्या प्रकृतिको समझ लेता है तो फिर उसकेलिए असीममें विश्वास रखना जरूरी है! बिना श्रद्धाके तो वह जी ही नहीं सकता।

मैंने अपने इतने दिनोंतकके सारे मानसिक श्रमका स्मरण किया और कांप उठा। अब मेरे सामने यह बात साफ हो गई थी कि अगर आदमी-को जीना है तो उसे या तो असीमकी तरफसे आंखें मूंद लेनी पड़ेंगी या फिर जीवनके प्रयोजनकी ऐसी व्याख्या स्वीकार करनी पड़ेगी जिससे ससीम और असीमके बीच संबंध स्थापित हो सके। ऐसी व्याख्या पहले भी मेरे सामने थी; परंतु जबतक मैं ससीममें विश्वास रखता रहा तब-तक मुझे इस व्याख्याकी आवश्यकता ही न थी, और मैं तर्ककी कसौटी-पर कसकर उसकी परख करने लगा। तर्कके प्रकाशमें मेरी पहलेकी संपूर्ण व्याख्या टुकड़े-टुकड़े हो गई। पर एक वक्त ऐसा आया कि ससीममेंसे मेरा विश्वास उठ गया। तब मैं जो कुछ जानता था उसके सहारे एक बौद्धिक आधारका निर्माण करने लगा—एक ऐसी व्याख्या-की खोजमें लगा जो जीवनको एक अर्थ, एक तात्पर्य प्रदान कर सके; लेकिन मैं कुछ भी न बना पाया। दुनियाके सर्वोच्च मस्तिष्कोंकी तरह मैं भी इसी नतीजेपर पहुँचा कि 'क' 'क'के बराबर है। मुझे इस नतीजेपर बड़ा आश्चर्य हुआ, यद्यपि इसके सिवा दूसरा कोई नतीजा निकल ही न सकता था।

जब मैंने प्रयोगात्मक विज्ञानोंमें जीवनके सवालका जवा बढ़ूंढना शुरू किया तब मैं कर क्या रहा था? मैं जानना चाहता था कि मैं क्यों जीता हूँ, और इसकेलिए मैंने उन तब चीजोंका अध्ययन किया जो मेरे

बाहर है। इसमें शक नहीं कि मैंने बहुत-सी बातें सीखीं; पर जिस चीज की मुझे जरूरत थी वह न मिली।

जब मैंन दार्शनिक विज्ञानोंमें जीवनके सवालका जवाब ढूंढा तब मैं क्या कर रहा था? मैं उन लोगोंके विचारोंका अध्ययन कर रहा था जिन्होंने अपनेको मेरी ही स्थितिमें पाया था और जो इस सवालका—'मैं क्यों जीता हूँ'—कोई जवाब न पा सके थे। इस खोजमें मैं उससे ज्यादा कुछ न जान सका जो खुद जानता था—यानी यह बात कि कुछ भी जाना नहीं जा सकता।

मैं क्या हूं? अनंत का एक अश। इस थोड़े शब्दोंमें सारी समस्या निहित है।

क्या यह मुमकिन है कि मनुष्यने अपनेसे यह प्रश्न करना सिर्फ कल शुरू किया है? क्या मुझसे पहले किसीने इस प्रश्नको हल करनेकी कोशिश ही नहीं की? यह प्रश्न जो इतना सीधा है और हर एक बुद्धिमान् बच्चे की जबानपर उठता है।

निस्संदेह यह प्रश्न उस जमानेसे पूछा जाता रहा है जबसे इंसानकी शुरुआत हुई। और इंसानकी शुरुआतसे ही इस प्रश्नके हलके बारेमें यह बात भी उतनी ही साफ रही है कि ससीमसे ससीम और असीमसे असीमकी तुलना इस कामकेलिए अपर्याप्त है। इसी तरहसे मनुष्यके आरंभ कालसे ससीम असीमके बीचके बंसंधकी खोज लोग करते रहे हैं और उसे उन्होंने व्यक्त भी किया है।

इन सब धारणाओंको, जिनमें ससीमका मेल असीमके साथ बैठाया गया है और जींवनके प्रयोजनकी प्राप्ति की गई है: यानी ईश्वरकी धारणा सकल्प शक्तिकी धारणा, पुण्यकी धारणा, हम तर्ककी कसौटीपर परखते हैं। और ये सब धारणाएं बुद्धिकी आलोचनाका सामना करनेमें अक्षम रहती हैं।

अगर यह बात इतनी भयकर न होती तो जिस अहंकार और आत्म-तुष्टिके साथ हम बच्चोंकी तरह घड़ीके पुर्जे-पुर्जे अलग कर देने और स्प्रिंग

या कमानीको निकालकर उसका खिलौना बना लेनेके बाद इस बातपर आश्चर्य प्रकट करते हैं कि घड़ी चल क्यों नहीं रही है, वह अत्यंत असंगत और भद्दी मालूम पड़ती।

ससीम और असीमके बीच परस्पर-विरोध का हल, और जीवनके प्रश्नका ऐसा उत्तर, जो उसका जीना संभव कर सके, आवश्यक और बहुमूल्य है। और यही एक हल है जिसे हम हर जगह, हर वक्त और सब तरह के लोगोंमें पा सकते हैं : यह हल, जो मानव-जीवनके आदिम युगसे चला आ रहा है; यह हल, जो इतना कठिन है कि हम इसके-जैसा दूसरा कोई हल निर्माण करनेमें असमर्थ हैं।—और इस हलको हम बड़े हलकेपनके साथ खत्म कर देते हैं, इसलिए कि फिर वही सवाल खड़ा कर सकें जो हर एकके लिए स्वाभाविक है और जिसका हमारे पास कोई जवाब नहीं है।

अनंत ईश्वर, आत्माकी दिव्यता, ईश्वरसे मानवीय बातोंका संबंध, आत्माका ऐक्य और अस्तित्व, नैतिक पाप-पुण्यकी मानवीय धारणा—ये सब ऐसी धारणाएं हैं जो मानवीय चिंतनकी प्रच्छन्न असीमतामें निर्मित होती हैं—ये वे धारणाएं हैं जिनके बिना न जीवन और न मेरा अस्तित्व संभव है। फिर भी संपूर्ण मानव-जातिके उस सारे श्रमका तिरस्कार करके मैं उसे नये सिरेसे और अपने मनमाने ढंगपर बनाना चाहता था।

यह ठीक है कि उस वक्त मैं इस तरह सोचता न था, पर इन विचारोंके अंकुर तो मेरे अंदर आ चुके थे। सबसे पहले तो मैंने यह समझा कि शापनहार और सुलेमानका साथ देने की मेरी बात मूर्खतापूर्ण है : हम देखते हैं कि जीवन एक बुराई है, फिरभी हम जीते रहते हैं। यह स्पष्टत: मूर्खतापूर्ण है, क्योंकि अगर जीवन निरर्थक है और मैं सिर्फ जो कुछ सार्थक है उसीका भक्त हूँ तो मुझे जीवनका अंत कर देना चाहिए और तब कोई इसे चुनौती देनेवाला न होगा। दूसरी बात मैंने यह अनुभव की कि हमारे सारे तर्क धुरी और दांतेसे अलग हो जानेवाले

पहियेकी भांति एक भ्रमपूर्ण वृत्तिमें ही घूम रहे हैं। चाहे हम कितना ही और कैसी भी अच्छी तरहसे तर्क करें, हमें उस सवालका जवाब नहीं मिल सकता। वहां तो सदा 'क' 'क' के बराबर ही रहेगा, इसलिए संभवतः हमारा यह मार्ग गलत है! तीसरी बात जो मेरी समझमें आने लगी, यह थी कि श्रद्धाने इस प्रश्नके जो उत्तर दिये हैं उनमें गंभीरतम मानव-ज्ञान एवं विवेक संचित है और यह कि मुझे तर्कके नामपर इनको इन्कार करनेका कोई अधिकार नहीं था, और वे ही ऐसे उत्तर हैं जीवन के प्रश्नका जवाब दे पाते हैं।

: १० :

मैंने इसे समझ तो लिया, पर इससे मेरी स्थिति कुछ ज्यादा अच्छी नहीं हुई। अब मैं ऐसे हर एक विश्वासको स्वीकार कर लेनेको तैयार था जिसमें बुद्धिका सीधा तिरस्कार न होता हो—क्योंकि वैसा होनेपर वह असत्य हो जाता है। मैंने पुस्तकोंके सहारे बौद्ध-धर्म और इस्लामका अध्ययन किया; सबसे अधिक मैंने पुस्तकों और अपने आस-पासके लोगोंसे ईसाई-धर्मका अध्ययन किया।

स्वभावतः पहले मैं अपनी मंडलीके कट्टर मतावलंबियों यानी उन लोगोंकी तरफ झुका जो विद्वान् थे—मैं गिर्जोंके धर्म-शास्त्र-वेत्ताओं, पादरियों तथा इवैंजेलिकलों (जो ईसाईद्वारा विश्वके मुक्ति-दानके सिद्धांतमें विश्वास रखते हैं) की तरफ झुका। मैंने इन आस्तिकोंसे उनके विश्वासोंके बारेमें सवाल किये और यह भी पूछा कि वे जीवनका क्या प्रयोजन समझते हैं?

यद्यपि मैंने उनको हर तरहकी छूट दी और हर तरहसे विवाद बचानेकी कोशिश की; फिर भी मैं इन लोगोंके धर्मको स्वीकार न कर सका। मैंने देखा कि वे जिन बातोंको अपना धर्म बताते हैं उनके सहारे जीवनका प्रयोजन स्पष्ट होनेकी जगह उलटा धुंधला हो जाता है। और वे

स्वयं अपने विश्वासोंसे कुछ इसलिए नहीं चिपके हुए हैं कि जीवनके उस प्रश्नका उत्तर दे सकें, जिसने मुझे श्रद्धातक पहुँचाया, बल्कि कुछ दूसरे ही उद्देश्योंके कारण उनको ग्रहण किये हुए हैं जो मेरे प्रतिकूल हैं।

मुझे याद है कि इन लोगोंके संसर्गमें बार-बार आशान्वित होनेके बाद मुझे भय होने लगा कि कहीं मैं फिर निराशाके पूर्ववती गर्त्तमें न गिर जाऊं।

वे लोग जितनी ही पूर्णताके साथ अपने सिद्धांत मुझे समझाते, उतनी ही स्पष्टताके साथ मुझे उनकी गलतियां नजर आतीं। मैं अनुभव करने लगा कि उनके विश्वासोंमें जीवनके प्रयोजनकी व्याख्याकी खोज करना व्यर्थ है।

यद्यपि वे अपने सिद्धांतोंमें ईसाई-धर्मके सत्योंके साथ बहुतेरी अनावश्यक और अनुचित बातें मिला देते थे, पर इसके कारण मेरे मनमें उनके प्रति विरोध नहीं पैदा होता था। उनकी तरफसे मन उचटता और भागता इसलिए था कि इन लोगोंका जीवन भी मेरी ही तरह था। अंतर केवल इतना था कि वे अपनी शिक्षाओं और उपदेशोंमें जिन सिद्धांतोंका प्रतिपादन करते थे, उनका दर्शन उनके जीवनमें नहीं होता था। मैंने साफ-साफ अनुभव किया कि वे अपनेको धोखा दे रहे हैं और मेरी तरह ही वे जीवनका इससे ज्यादा कुछ तात्पर्य नहीं समझते कि जबतक जिंदगी है तबतक जिओ और जो कुछ मिले उपभोग करो। अगर उनको जीवनके ऐसे प्रयोजनका ज्ञान होता जो क्षति, दुःख और मृत्युका भय नष्ट कर देता है तो फिर वे इन चीजोंसे इतने डरते न होते। पर मेरी श्रेणीके ये आस्तिक, ठीक मेरी ही तरह, वैभव और संपन्नताके बीच रहते हुए, उनकी वृद्धि अथवा रक्षा करनेका प्रयत्न करते थे वे भी विपत्ति, पीड़ा और मृत्युके भयसे पीड़ित थे और मेरी तरह या हम-जैसे अन्य नास्तिकोंकी तरह ही वे अपनी वासनाओं एवं आकां-

च्छाओंकी पूर्तिकेलिए जीते थे–वे उतनी ही बुरी तरह जीवन व्यतीत करते थे जिस तरह नास्तिक करते हैं।

कोई तर्क मुझे उनके विश्वासकी सचाईमें यकीन नहीं दिला सकता था। यदि उनके आचरणमें भी गरीबी, बीमारी और मौतका वह भय न दिखाई पड़ता जो मुझमें था, तो मैं मानता कि वे जीवनका कुछ अर्थ समझते हैं। मुझे अपनी श्रेणीके आस्तिकोंके आचरणमें ऐसा दिखाई नहीं पड़ा। इसके विपरीत मैंने उन लोगोंको इस तरहका आचरण करते देखा, जो जबर्दस्त नास्तिक थे[1]; आस्तिकोंमें कहीं वैसा आचरण दिखाई नहीं पड़ा।

तब मैंने समझा कि मैं उस श्रद्धाकी खोज नहीं कर रहा हूँ जो इन लोगोंके विश्वासोंमें निहित है और यह कि उनका विश्वास कोई सच्चा विश्वास नहीं है, बल्कि जीवनको एक इन्द्रियासक्त आत्म-तुष्टि मात्र है।

मैंने समझ लिया कि इस तरहकी श्रद्धा चाहे अनुताप-युक्त सुलेमान को उसकी मृत्यु-शय्या पर, यदि शांति नहीं तो कम-से-कम कुछ भुलावा दे सके, पर यह उन करोड़ों मनुष्योंकी कोई सेवा नहीं कर सकती जिनका काम दूसरोंकी मेहनतपर मौज उड़ाना नहीं बल्कि जीवनकी सृष्टि करना है।

[1]टॉल्स्टॉय का यह वाक्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि उन्होंने इस जमानेमें क्रांतिकारी या 'जनताकी ओर लौटो' आंदोलनका बहुत ही कम जगहोंमें जिक्र किया है। इस आंदोलनमें बहुतेरे युवक-युवतियोंने अपने गृह, संपत्ति और जीवनतकका बलिदान किया था। टॉल्स्टॉय और इन क्रांतिकारियोंके विचारोंमें समानता थी और दोनों किसी-न-किसी रूपमें मानते थे कि समाजके ऊपरी तलके लोग या उच्चवर्ग पराश्रभोगी हैं और उन लोगोंका ही खून चूस रहे हैं जो उनका बोझ अपने कंधों-पर उठाये हुए हैं।—सं०

अगर संपूर्ण मानव-जातिको जीनेकेलिए समर्थ बनाना है और अगर हम चाहते हैं कि वे जीवनका प्रयोजन समझते हुए जीवन बितायें तो इसकेलिए इन करोड़ों आदमियोंको श्रद्धाका एक दूसरा ही रूप, सच्चा रूप समझना चाहिए। वस्तुतः शापनहार और सुलेमानके साथ ही मैंने भी जो अपने जीवनका अंत नहीं किया तो कुछ उससे मुझे श्रद्धाके अस्तित्वमें विश्वास नहीं हुआ; श्रद्धाके अस्तित्वमें विश्वास तो मुझे यह देखकर हुआ कि ये करोड़ों आदमी जीते रहे हैं और जी रहे हैं और उनकी जीवन-धारामें सुलेमान और हम जैसे लोग बहते रहे हैं।

तब मैं दीन-हीन, सीधे-सादे और अशिक्षित आस्तिकों यानी तीर्थयात्रियों, पुरोहितों, सप्रदायों और किसानोंके नजदीक खिचने लगा। ये मामूली आदमी भी उसी ईसाई-धर्मको मानते थे जिसको मानने का दावा हमारे दायरेके कृत्रिम आस्तिक लोग करते थे। इन आदमियोंमें भी मैंने देखा कि ईसाई सत्योंके साथ बहुतेरे अंध-विश्वासोंको मिला दिया गया है; लेकिन दोनोंमें फर्क यह था कि हमारे वर्गके आस्तिकोंकेलिए तो ये अंध-विश्वास सर्वथा अनावश्यक थे और वे उनके जीवनसे मेल न खाते थे—वे एक तरहकी विषयासक्तिके झुकावके द्योतक थे; पर श्रमिक लोगोंके बीच प्रचलित अंध-विश्वास उनके जीवनके अनुरूप थे और उनका उनके जीवनसे कुछ ऐसा मेल बैठता था कि उन अंध-विश्वासोंके बिना उनके जीवनकी कल्पना ही न की जा सकती थी—वे उनके जीवनकी एक जरूरी शर्त थे। हमारे वर्ग दायरेके आस्तिकोंकी सारी जिन्दगी उनके विश्वासोंके प्रतिकूल था; पर श्रमिक आस्तिकों की सारी जिंदगी जीवनके उस अर्थको दृढ़ और पुष्ट करती थी जो वे श्रद्धासे प्राप्त करते थे। इसलिए मैं इन साधारण लोगोंके जीवन और विश्वासपर अच्छी तरह ध्यान देने लगा और जितना ही मैं इसपर विचार करता, उतना ही मेरा विश्वास पक्का होता जाता था कि उनके पास सच्ची श्रद्धा है—ऐसी श्रद्धा जिसकी उनको जरूरत है और जो उनके जीवनको सार्थक करती और उसका जीना संभव बनाती है। हमारे वर्गमें जहां श्रद्धा-रहित जीवन

संभव है और हजारमें मुश्किलसे एक आदमी अपने को आस्तिक कहत है, तहां उनमें मुश्किलसे हजारमें एक नास्तिक मिलेगा। मैंने अपने वर्गमे देखा था कि लोगोंका सारा जीवन बेकारी, सुस्ती, राग-रंग और असंतोष में बीतता है, पर इसके विपरीत इन साधारण आदमियोंमें मैंने यह देख कि उनका जीवन घोर श्रममें बीतता है, और वे अपने जीवनसे संतुष्ट हैं। हमारे वर्गके लोग दुःख व कष्ट पड़नेपर भाग्यका विरोध करते और उसे कोसते हैं, परंतु इसके विपरीत ये लोग बीमारी और दुःखको बिना किसी व्यग्रता, बगैर किसी परेशानी व विरोधके तथा इस शांत एव दृढ़ विश्वासके साथ स्वीकार कर लेते हैं कि जो होता है सब अच्छा ही है हममें जो जितना ही चतुर और बुद्धिमान् है, वह उतना ही जीवनका प्रयोजन कम समझता है और जीवनके दुःखों और मृत्युमें एक कटु व्यग देखता है, परंतु इसके विपरीत ये साधारण आदमी जीते हैं और दुःख भी भोगते हैं; वे मृत्यु और कष्टको शांति एवं स्थिरतापूर्वक, और अधिकांशतया हंसी-खुशीके साथ ग्रहण करते हैं। हमारे वर्ग दायरेमें शांतिपूर्ण मृत्यु, भय और निराशासे रहित मृत्यु, दुर्लभ अपवाद है परंतु इसके विपरीत इम लोगोंमें चितापूर्ण, छटपटाहट से भरी हुई और दुःखपूर्ण मृत्यु बहुत ही कम देखी जाती है। और ऐसे लोगोंसे दुनिय भरी पड़ी है, जिनके पास उन सब वस्तुओंका सर्वथा अभाव है जो हमारे लिए या सुलेमानकेलिए जीवनकी सबसे बड़ी अच्छाई हैं, फिर भी वे अत्यधिक आनंदका अनुभव करते हैं। मैंने अपने आस-पास और दूरतक देखा। मैंने बीते हुए युगके और आजकलके असंख्य लोगोंके जीवन-पर ध्यान दिया। इनमें जीवनका अर्थ समझनेवाले और जीने एव मरनेमें समर्थ एक-दो या दस-बीस नहीं, बल्कि सैकड़ों, हजारों, लाखो और करोड़ों मनुष्य मुझे दिखाई पड़े। और यद्यपि उनमें भिन्न-भिन्न रंग-ढंग, आचार-व्यवहार, मन, शिक्षा और स्थितिके आदमी थे, फिर भी मेरे अज्ञानके सर्वथा प्रतिकूल वे सब जीवन और मृत्युका अर्थ समझते थे तथा अभाव एवं दुःख कष्ट सहते हुए शांतिपूर्वक काम करते

जीते तथा मरते थे—उनको इनमें मिथ्या अहंकार नहीं, बल्कि कुछ अच्छाई दिखाई देती थी।

मैंने इन आदमियोंसे प्रेम करना सीखा। जितनी ही मुझे उन लोगोंके जीवनकी जानकारी होती गई—उन लोगोंके जीवनकी जो जी रहे हैं तथा उनकी भी जो मर चुके हैं, पर उनके बारे में मैंने पढ़कर या सुनकर जानकारी हासिल की है—उतना ही उनके लिए मेरा प्रेम बढ़ता गया और मेरे लिए जीना आसान होता गया। लगभग दो वर्षोंतक मेरी यह हालत रही और इस बीच मेरे अंदर एक भारी परिवर्तन हो गया—वह परिवर्तन, जो बहुत दिनोंसे धीरे-धीरे घनीभूत हो रहा था और जिसकी आशा सदा मुझमें बनी रही थी। इसका नतीजा यह हुआ कि अपने वर्गके लोगों अर्थात् धनवान् और विद्वान् आदमियोंका जीवन न सिर्फ मेरे निकट फीका और नीरस हो गया; बल्कि मेरी दृष्टिमें उसका कोई मूल्य ही न रह गया। अपने लोगोंको संपूर्ण आचरण, वाद-विवाद, कला और विज्ञान मेरे सामने एक नई रोशनीमें आया। मैंने समझ लिया कि यह सब आत्म-असंयममात्र है और उनमें कुछ अर्थ लेना असंभव है; इसके प्रतिकूल जीवनका निर्माण करनेवाले श्रमिक लोगोंका जीवन मुझे सच्चे अर्थसे भरा दिखाई पड़ा। मैंने समझा कि यही जीवन है और इस जीवनसे प्राप्त होनेवाला अर्थ ही सच्चा है : और मैंने इसे स्वीकार कर लिया।

: ११ :

मुझे याद आया कि जब मैं उन आदमियोंको इन विश्वासोंकी घोषणा करते देखता था, जिनके जीवन और आचरणमें उनका विरोध होता था तो इन्हीं विश्वासोंके प्रति मेरे हृदयमें विरक्ति पैदा होती थी और वे मुझे निस्सार प्रतीत होते थे, पर जब मैंने उन लोगोंको देखा जो इन विश्वासोंके अनुकूल जीवन व्यतीत करते थे तब उन्हीं विश्वासोंने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया और वे मुझे ठीक मालूम पड़ने लगे। इन

बातोंकी याद आनेपर मैंने समझा कि क्यों तब मैंने इन विश्वासोंको अस्वीकार कर दिया था और उन्हें निरर्थक पाया था, और क्यों अब उन्हींको स्वीकार करता हूँ और उन्हें अर्थ एवं प्रयोजनसे पूर्ण पाता हूँ। मैं समझ गया कि मैंने गलती की थी और क्यों गलती की थी। इस गलतीका कारण मेरा गलत तरीकेपर सोचना उतना न था जितना मेरा गलत तरीकेपर जीवन व्यतीत करना था मैंने समझ लिया कि मेरे किसी विचार-दोषने सत्यको मुझसे छिपा नहीं रखा था, बल्कि आकांक्षाओं और वासनाओंकी तृप्तिके प्रयत्नमें बीतनेवाले मेरे विषयासक्त जीवनने ही इस सत्यको मेरी आंखों-की ओट कर रखा था। अब यह भी मेरी समझमें आ गया कि मेरा प्रश्न कि 'मेरा जीवन क्या है' उसका उत्तर--'वह एक बुराई है'—बिलकुल ठीक था। गलती सिर्फ इतनी थी कि यह उत्तर सिर्फ मेरे जीवनकी ओर संकेत करता था, पर मैं इसे सब लोगोंके सामान्य-जीवनपर घटाता था। अब मैंने फिर अपनेसे प्रश्न किया कि मेरा जीवन क्या है और मुझे उत्तर मिला : एक बुराई और असंगति। और सचमुच मेरा जीवन—भोग-विलास और आकांक्षाओं का जीवन—बुरा और निरर्थक था, इसलिए वह उत्तर--'जीवन एक बुराई और असंगति है'—सिर्फ मेरे जीवनकी ओर संकेत करता था, न कि सामान्य मानव-जीवनकी ओर। तब मैंने उस सत्यको समझा, जिसे बादमें 'गोस्पेल' (महात्मा ईसाके सदुपदेशों) में पाया, कि 'मनुष्य प्रकाशको अपेक्षा अंधकारको ज्यादा प्रेम करते हैं; क्योंकि उनके आचरण पाप-पूर्ण हैं। प्रत्येक पापी आदमी प्रकाशसे घृणा करता है और इसलिए प्रकाशके समीप नहीं जाता कि उसके आचरणों और कामोंका तिरस्कार किया जायगा।' मैंने यह भी अनुभव किया कि जीवनके अर्थको समझनेकेलिए पहले तो यह जरूरी है कि हमारी जिंदगी बुराईसे भरी और निरर्थक न हो; और फिर उसकी व्याख्या करनेकेलिए विवेककी आवश्यकता पड़ती है। तब मेरी समझमें आया कि क्यों इतने लम्बे असेंतक मैं ऐसे स्पष्ट सत्यके इर्द-गिर्द चक्कर काटता रहा और यह भी कि अगर किसीको मानव-जातिके जीवनके

विषयमें सोचना और बोलना हो तो उसे संपूर्ण जातिके जीवनके बारेमें सोचना और बोलना चाहिए, न कि उन लोगोंके जीवनके विषयमें जो पंगु और परोपजीवी जीवन बिताते हैं। यह सत्य तो सदा उतना ही सच्चा था जितना दो और दो मिलकर चार होते हैं। पर मैंने इसे स्वीकार नहीं किया था: क्योंकि दो और दो चार मान लेने पर मुझे यह भी मानना पड़ता कि मैं बुरा हूँ; और मेरेलिए यह अनुभव करना कि मैं भला हूँ: दो-दो बराबर चारके स्वीकार करनेसे कहीं ज्यादा जरूरी और महत्त्वपूर्ण था। यह ज्ञान होनेपर मैं भले आदमियोंके प्रति आकर्षित हुआ, उनको प्यार करने लगा, अपने प्रति मेरे मनमें घृणा पैदा हुई और मैंने सत्यको स्वीकार किया। अब सब बातें मेरे सामने स्पष्ट हो गईं।

अगर एक जल्लाद, जिसकी सारी जिंदगी लोगोंको दारुण-यंत्रणा देने और उनका सिर काटनेमें बीती हो,—या एक शराबी व पागल जो एक ऐसे अंधेरे कमरेमें जिंदगीभर रहा हो जिसे उसने अपवित्र कर रखा है और जो सोचता हो कि इसे छोड़कर बाहर निकलते ही वह नष्ट हो जायगा—अपनेसे सवाल करे कि 'जीवन क्या है' तो वह इसके सिवा और क्या जवाब पा सकता है कि जीवन सबसे बड़ी बुराई है। इस पागलका जवाब बिलकुल ठीक होगा, पर वहींतक जहांतक यह स्वयं उस पर लागू होता है। अगर कहीं मैं भी ऐसा ही एक पागल होऊं? और कहीं हम सब धनवान और निठल्ले आदमी इसी तरह पागल हों तब? मैंने अनुभव किया कि हम सब सचमुच ऐसे ही पागल हैं। कम-से-कम मैं तो अवश्य ऐसा था।

चिड़ियाका निर्माण ही इस तरह का होता है कि वह जरूरी तौर पर उड़े, चारा इकट्ठा करे और अपना घोंसला बनाए और जब मैं किसी चिड़ियाको ऐसा करते देखता हूँ तो उसके आनंदसे मुझे भी खुशी होती है। बकरी, खरगोश और भेड़िये भी इस तरह बनाये गये हैं कि वे अपने लिए भोजन जुटायें, बच्चे पैदा करें और कुटुंबको खिलायें, उनका पालन-पोषण करें और जब वे ऐसा करते हैं तो मुझे दृढ़ विश्वास होता

है कि वे सुखी हैं और उनका जीवन ठीक तौरसे बीत रहा है। फिर आदमीको क्या करना चाहिए? उसे भी जानवरोंकी तरह अपनी जीविका उपार्जन करना चाहिए। दोनोंमें सिर्फ एक अंतर है कि अगर आदमी यह काम अकेले करेगा तो मिट जायगा; उसे जीविका न सिर्फ अपने-लिए बल्कि सबकेलिए प्राप्त करनी चाहिए। और जब वह ऐसा करता है तब मुझे पक्का विश्वास हो जाता है कि वह सुखी है और उसका जीवन ठीक तौरपर बीत रहा है। पर मैंने अपने उत्तरदायी जीवनके तीस वर्षोंमें क्या किया? सबकेलिए जीविका-उपार्जन करना तो दूर, मैंने कभी अपनेलिए भी खाद्य-सामग्री पैदा न की। मैं एक परान्नजीवीकी तरह जीता रहा और अपनेसे सवाल करता रहा कि मेरे जीवनका प्रयोजन क्या है? मुझे उत्तर मिला : 'कोई प्रयोजन नहीं।' अगर मानव-जीवनका अर्थ उसे पुष्ट करनेमें है तो फिर मैं—जो तीस सालतक जीवनका समर्थन और पुष्टि करनेमें नहीं, बल्कि अपने अंदर और दूसरोंके अंदर उसका विनाश करनेमें लगा रहा—इसके सिवा और कोई जवाब कैसे प्राप्त कर सकता था कि मेरा जीवन निरर्थक और दूषित है?...निस्संदेह वह निरर्थक और दूषित—दोनों था

विश्व-जीवन किसीके संकल्पसे चल रहा है—सारे विश्वके जीवन और हमारे जीवनसे कोई अपना तात्पर्य सिद्ध करता है। उस संकल्प-शक्तिका अर्थ समझनेकी आशा करनेकेलिए पहले हमसे जिस कार्य-की आशा की जाती है, उसे करना चाहिए। लेकिन यदि मैं वह न करूं जिसकी आशा मुझसे की जाती है तो मैं कभी समझ न सकूंगा कि मुझसे क्या करनेकी आशा की जाती है और यह समझना तो और भी कठिन होगा कि हम सब लोगोंसे और सारे विश्वसे क्या करनेकी आशा की जाती है।

अगर एक नंगे भिखारीको सड़कसे पकड़कर सुंदर भवनमें ले जाकर रखा जाय, और उसे अच्छी तरह खिलाया-पिलाया जाय और उसे ऊपर नीचे एक हैंडिल घुमाने का काम दिया जाय तो प्रकट है कि इस

बातपर बहस करनेके पहले, कि क्यों उसे सड़कसे वहां लाया गया और क्यों उसे हैंडिल घुमाना चाहिए और यह कि क्या वहांका सारा काम सुव्यवस्थित है, मतलब और सब बातोंके पहले उसे हैंडिल घुमाना चाहिए। अगर वह हैंडिलको घुमायेगा तो उसे स्वयं पता चल जायगा कि इससे एक पंप चलाया जाता है और पंपके जरिये पानी निकलता है और उस पानीसे बागकी क्यारियोंकी सिंचाई होती है। तब वह पंपिंग स्टेशनसे दूसरी जगह ले जाया जायगा, वहां वह फल चुनकर इकट्ठे करेगा और अपने प्रभुके आनंदमें साझीदार होगा; इस तरह धीरे-धीरे उन्नति करते हुए और छोटे कार्योंसे बड़े कार्योंको करते हुए वह दिन-दिन वहांकी व्यवस्थाकी अधिक जानकारी प्राप्त करता जायगा और इस तरह जब वह स्वयं वहांकी व्यवस्थामें भाग लेने लगेगा तो उसके मनमें यह प्रश्न करनेका विचार ही न उठेगा कि वह क्यों वहां है, और इसमें तो संदेह ही नहीं कि वह प्रभुकी बुराई कभी न करेगा।

इसी तरह वे लोग यानी सीधे-सादे, अशिक्षित श्रमिक, जिन्हें हम जानवर समझते हैं, उसकी इच्छाका पालन करते हैं, प्रभुकी बुराई नहीं करते, लेकिन हम बुद्धिमान् लोग प्रभुका दिया भोजन तो कर लेते हैं, लेकिन प्रभु जो चाहता है उसे नहीं करते,—करना तो दूर रहा उलटे एक गोलमें बैठकर बहस करते हैं: 'क्यों हमें उस हैंडिलको चलाना चाहिए? क्या यह मूर्खतापूर्ण नहीं है?' हम लोग ऐसे ही निर्णय करते हैं कि प्रभु मूर्ख है, या उसका अस्तित्व ही नहीं है, और हम बुद्धिमान् हैं। पर हम सिर्फ यही अनुभव कर पाते हैं कि हम बिलकुल निरर्थक हैं और हमें किसी तरह अपनेसे पिंड छुड़ाना चाहिए।

: १२ :

बौद्धिक ज्ञानके भ्रमकी चेतनाने मुझे फालतू युक्ति, तर्क अथवा विवाद के प्रलोभनसे छुड़ानेमें सहायता की। इस विश्वाससे कि सत्यका ज्ञान तदनुकूल आचरणसे ही हो सकता है, मुझे अपनी जीवन-विधिके औचित्य-

में संदेह पैदा हुआ; लेकिन मेरी रक्षा केवल इस कारण हुई कि मैं सबसे कटकर अलग रहना छोड़ सका और श्रमिक लोगोंके सीधे-सादे जीवनको देख सका तथा यह समझ सका कि केवल यही सच्चा जीवन है। मैंने समझ लिया कि यदि मैं जीवन और उसके अर्थको समझना चाहूँ तो मुझे परान्नजीवीका नहीं, बल्कि वास्तविक जीवन बिताना चाहिए और मानव जातिने जीवनको जो अर्थ प्रदान किया है उसे ग्रहण करना और उस जीवनमें निमग्न होकर उसको पहचानना चाहिए।

उस जमानेमें मेरे ऊपर जो बीती उसकी कथा इस प्रकार है। पूरे साल भरतक, जब प्रतिक्षण मेरे मनमें यह प्रश्न उठता था कि क्यों न मैं गोली या फांसीकी रस्सीसे सारे झगड़ेका खात्मा कर दूं, तभी उन विचार-धाराओंके साथ-साथ जिनके बारेमें मैं ऊपर जिक्र कर चुका हूँ, मेरा हृदय एक वेदनामयी अनुभूतिसे दब रहा था। इसे मैं ईश्वरकी खोजके सिवा और कुछ कहनेमें असमर्थ हूँ।

मैं कहना चाहता हूँ कि ईश्वरकी इस खोजमें तर्क नहीं, अनुभूति थी; क्योंकि यह खोज मेरे विचार-प्रवाहसे नहीं पैदा हुई थी, (उसमें उसका प्रत्यक्ष विरोध भी था) बल्कि हृदयसे उद्‌भूत हुई थी। यह किसी अज्ञात प्रदेशमें अनाथ और इकले पड़ जाने और किसीसे सहायता पानेकी आशाकी भावना थी।

यद्यपि मुझे पूरा विश्वास था कि ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करना असंभव है (कांटने दिखा दिया था, और मैं उसकी बातको समझता भी था, कि उसे सिद्ध या प्रमाणित नहीं किया जा सकता), फिर भी ईश्वरकी प्राप्तिकी चेष्टामें लगा रहा; मैंने आशा रखी कि वह मुझे प्राप्त होगा और पुराने स्वभावके कारण उसके प्रति प्रार्थना और विनय करता रहा जिसकी मुझे खोज थी, पर जिसे अभीतक मैंने पाया न था। कांट और शापनहारने जिन तर्कोंके द्वारा ईश्वरके अस्तित्त्वको प्रमाणित करना असंभव बताया था उनपर मैं मनमें विचार करने लगा। मैंने उनकी जांच शुरू की और उनका खंडन करने लगा। मैंने अपनेसे कहा कि

कारण, काल एवं आकाशकी भांति कोई विचार-श्रेणी नहीं है। यदि मेरा अस्तित्व है तो इसका कोई कारण अवश्य होगा और फिर इन कारणोंका भी कोई कारण होगा। और सबका जो मूल कारण है उसे ही लोगोंने 'ईश्वर' कहा है। मैं इस विचार पर रुका और अपनी सारी शक्तिसे उस आदि कारणकी उपस्थिति अनुभव करनेकी कोशिशकी और ज्योंही मैंने स्वीकार कर लिया कि कोई ऐसी शक्ति अवश्य है जिसके वशमें मैं हूँ, त्योंही मैंने अनुभव किया कि अब मेरेलिए जीना संभव है। लेकिन मैंने अपनेसे पूछा : वह कारण, वह शक्ति क्या है ? उसका चिंतन मुझे किस प्रकार करना चाहिए ? उस शक्तिके साथ जिसे मैं 'ईश्वर' कहता हूँ मेरा संबंध क्या है ? इन सवालोंके मुझे वही पूर्व-परिचित उत्तर मिले : 'वह स्रष्टा और पालक है।' इस जवाबसे मुझे संतोष नहीं हुआ, और मैंने अनुभव किया कि जिस चीजकी मुझे अपने जीवनकेलिए आवश्यकता है उसे मैं अपने अंदर-ही-अंदर खो रहा हूँ। मैं डर गया और जिस ईश्वरकी खोजमें था, उसीसे प्रार्थना करने लगा कि वह मेरी सहायता करे। लेकिन मैं जितनी ही प्रार्थना करता था उतना ही मुझे यह स्पष्ट होता गया कि 'वह' मेरी नहीं सुनता है और कोई ऐसा नहीं है जिसके सामने मैं अपनी पुकार करूं। तब हृदयकी गहरी निराशाके साथ, मैंने कहा : प्रभु ! मुझपर कृपा करो। मेरी रक्षा करो। हे नाथ ! मुझे ज्ञान दो।' परंतु किसीने मुझपर कृपा नहीं की और मैं अनुभव करने लगा कि मेरे जीवनकी गति रुक रही है।

लेकिन हर तरफ से टकराकर बार-बार मैं इसी नतीजे पर पहुँचता कि बिना किसी कारण या हेतु या प्रयोजनके इस संसारमें मेरा आगमन संभव नहीं है; मैं पक्षीके उस बच्चेकी तरह नहीं हो सकता जो एकाएक अपने घोंसलेसे गिर पड़ा हो। और यदि मैं मान भी लूँ कि बात ऐसी ही है और मैं पीठके बल लंबी घासोंपर पड़ा हुआ चीख रहा हूँ, तब भी तो मैं चीखता इसलिए हूँ कि मैं जानता हूँ कि एक मांने मुझे अपने पेटमें बढ़ाया, सेया, जन्म दिया और चारा चुगा-चुगाकर मुझे बड़ा किया

है तथा वह मुझे प्यार करती है। तब वह—वह मां कहां है? अगर मुझे त्याग दिया गया है तो वह कौन है जिसने मुझे त्यागा है? मैं अपने-से यह बात छिपा नहीं सकता कि किसी-न-किसीने मुझे जन्म दिया, पाला और मुझे प्रेम किया है। तब यह 'कोई' कौन है? फिर वही उत्तर 'ईश्वर'? तब वह मेरी खोज, मेरी निराशा और मेरे संघर्षको जानता है और देख रहा है।

तब मैंने अपने मनमें कहा—'उसका अस्तित्त्व है।' इसे स्वीकार करनेके अनंतर क्षणभरमें मेरे अंदर जीवन उठ खड़ा हुआ और मुझे जीवनकी संभवनीयता और आनंदका अनुभव हुआ। पर फिर वही बात हुई; ईश्वरके अस्तित्त्वकी इस स्वीकृतिके बाद मैं उसके साथ अपने संबंध-का पता लगाने चला; और फिर मैंने उस ईश्वरकी कल्पना की, जो हमारा स्रष्टा है और जिसने अपने पुत्रको हमारे उद्धारकेलिए पृथ्वी-पर भेजा, बस जगत् तथा मुझसे पृथक् वह ईश्वर फिर मेरी आंखोंके सामने ही बर्फके टुकड़ेकी तरह पिघलकर बह गया; उसका कोई चिह्न नहीं रह गया और फिर मेरे अंदर जीवनका वह स्रोत सूख गया; निराशा-से मेरा मन भर गया और मैंने अनुभव किया कि सिवाय अपनी हत्या कर डालनेके अब मैं और कुछ नहीं कर सकता। और सबसे बुरी बात तो यह थी कि मैं अनुभव करता था कि मैं अपनेको मार भी नहीं सकता।

केवल दो या तीन बार नहीं, बल्कि सैकड़ों बार मेरी यही दशा हुई; पहले आनंद एवं उल्लास और फिर जीवनकी असंभवनीयताकी चेतना और निराशा।

मुझे याद है, बसंतकी शुरुआतके दिन थे। मैं वनमें अकेला चुप-चाप बैठा उसकी ध्वनि सुन रहा था, जो कि मैं बराबर पिछले तीन वर्षोंमें सुन रहा था। मैं उसीका ध्यान लगाये हुए था। मैं पुनः ईश्वरकी खोजमें था।

मैंने झुंझलाकर अपनेसे कहा—'अच्छा, मान लो कोई ईश्वर नहीं है। कोई ऐसा नहीं है जो मेरी कल्पनाके बाहरकी वस्तु हो और मेरे सारे

जीवनकी तरह वास्तविक हो। उसका अस्तित्व नहीं है और कोई चमत्कार उसके अस्तित्वको प्रमाणित नहीं कर सकते; क्योंकि चमत्कार तो मेरी ही कल्पना के अंतर्गत हैं, फिर वे बुद्धि-ग्राह्य भी नहीं हैं।

'लेकिन जिस ईश्वरकी मैं खोज करता हूँ उसके प्रति मेरा यह अंत-र्बोध, मेरी यह अंतर्धारणा? मैंने अपनेसे पूछा—'यह अंतर्बोध कहांसे आया?' बस यह सोचते ही, फिर मेरा अंतर जीवनकी आनंदमयी लहरोंसे भर गया। मेरे चतुर्दिक् जो कुछ था सब जीवनसे पूर्ण और सार्थक हो उठा। लेकिन मेरा यह आनंद अधिक समय तक स्थिर न रह सका। मेरा मन फिर अपनी उधेड़-बुनमें लग गया।

मैंने अपने मनमें कहा—'ईश्वरकी धारणा तो ईश्वर नहीं है। धारणा तो वह चीज है जो मेरे ही अंदर जन्म लेती है। ईश्वरकी धारणा तो एक ऐसी चीज है जिसे हम अपने अंदर बना सकते या बननेसे रोक सकते हैं। यह तो वह चीज नहीं है जिसकी खोजमें मैं हूँ। मैं तो उस चीजकी खोज कर रहा हूँ जिसके बिना जीवन संभव ही न हो।' बस फिर मेरे बाहर-भीतर जो कुछ था मानो सब निर्जीव होने लगा, और फिर मेरे मनमें अपनेको समाप्त कर देनेकी इच्छा पैदा हुई।

किंतु तब मैंने अपनी दृष्टि अपनेपर, और मेरे अंदर जो कुछ चल रहा था, उसपर डाली, और जीवनकी गतिके बंद होने और फिर प्रफुल्लता और स्फूर्तिका प्रवाह जारी होनेकी उन क्रियाओंका स्मरण किया जो मेरे अंदर सैकड़ों बार घटित हो चुकी थीं। मुझे याद आया कि मुझमें सिर्फ तभीतक जीवनकी अनुभूति हुई जब-जब मैंने ईश्वरमें विश्वास रखा। जो बात पहले थी, वही अब भी है; जीनेकेलिए मुझे सिर्फ ईश्वरके अस्तित्वके निश्चयकी जरूरत है; और ज्योंही मैं उसे भूलता हूँ या उसमें अविश्वास करता हूँ त्योंही मेरी मृत्यु निश्चित है।

तब स्फूर्ति और मृत्युके ये अनुभव क्या हैं? जब ईश्वरके अस्तित्वमें मेरे विश्वासका लोप हो जाता है तब मानो मेरी जीवन-शक्तिका अंत हो जाता है; तब मैं अपनेको जीता हुआ नहीं अनुभव करता। अगर मेरे

अंदर उसे पानेकी एक धुंधली-सी आशा न होती तो अबतक कभीका मैं अपनी हत्या कर चुका होता। अपनेको सचमुच जीता हुआ तो मैं तभीतक अनुभव करता हूँ जबतक मुझे 'उसकी' अनुभूति होती रहती है और मुझे उसकी खोज रहती है। 'तुम और क्या खोजते हो?' मेरे अंदर एक आवाज हुई। 'यही वह है। वह है जिसके बिना कोई जी नहीं सकता। ईश्वरको जानना और जीवित रहना एक ही बात है। ईश्वर ही जीवन है।'

'ईश्वरकी खोज करते हुए जीओ, तब तुम्हारा जीवन ईश्वर-हीन न होगा।' तब मेरे अंदर और बाहर जो कुछ था वह सब प्रकाशसे पूर्ण हो उठा और उस प्रकाशने फिर मुझे परित्याग नहीं किया।

इस तरह मैं आत्म-हत्यासे बच गया। यह मैं नहीं कह सकता कि कब और कैसे यह परिवर्तन हुआ। जैसे धीरे-धीरे मेरे अंदरकी जीवन-शक्ति नष्ट हो गई थी और मेरेलिए जीना असंभव हो उठा था, जीवन-की गति बन्द हो गई थी और मुझे आत्म-हत्या करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती थी, उसी तरह धीरे-धीरे मेरे अंदर जीवन-शक्तिका प्रत्यागमन हुआ। और यह एक आश्चर्य-जनक बात है कि जीवनकी जो शक्ति मेरे अंदर लौटी वह कोई नई नहीं थी, बल्कि वही पुरानी शक्ति थी जिसने मेरे जीवनके प्रारम्भिक दिनोंमें मेरा भार वहन किया था।

मैं पुनः उसी अवस्थामें पहुँच गया जो बचपन और किशोरावस्थाके प्रारंभिक दिनोंमें थी। पुन: मेरे हृदयमें उस संकल्प-शक्ति[1] पर विश्वास उदय हुआ। जिसने मुझे उत्पन्न किया और जो मुझसे कुछ आशा रखती है। मैं पुन: इस विश्वास पर पहुँचा कि मेरे जीवनका प्रधान और एकमात्र उद्देश्य पहलेसे अधिक अच्छा होना अर्थात् उस संकल्प-शक्तिके अनुसार जीवन व्यतीत करना है। मैं इस विश्वासपर पहुँचा कि मानव-जातिने अनादि-कालसे अपने पथ-प्रदर्शनकेलिए जो कुछ खोज निकाला है उसमें ही मैं उस संकल्प-शक्तिकी अभिव्यक्ति प्राप्त कर सकता हूँ।

१ टॉल्स्टॉयने 'ईश्वरेच्छा'के अर्थमें इस शब्दका प्रयोग किया है।

मतलब यह कि मैं ईश्वरमें, नैतिकपूर्णतामें और जीवनके प्रयोजनकी परंपरामें विश्वास करने लगा। दोनों अवस्थाओंमें अंतर इतना ही था कि उस समय ये सब बातें मैंने अचेतनावस्थामें स्वीकार कर ली थीं, किंतु अब मैं जान गया था कि इसके बिना मेरा जीवन ही असंभव है।

मुझपर कुछ इस तरहसे बीती : मैं एक नावमें (मुझे याद नहीं है कब) चढ़ा दिया गया और किसी अज्ञात किनारेसे धक्का देकर नदीकी-ओर बढ़ा दिया गया। मुझे दूसरे किनारेकीओर संकेत करके गंतव्य स्थानका एक धुंधला-सा आभास दे दिया गया और मेरे अनभ्यस्त हाथों-में डांड पकड़ा देनेके बाद लोगोंने मुझे अकेले छोड़ दिया। मैंने अपनी शक्ति-भर खेकर नावको आगे बढ़ाया, लेकिन ज्यों-ज्यों मै मंझधारकी ओर बढ़ा त्यों-त्यों प्रवाह तीव्र होता गया और वह बार-बार मेरे लक्ष्यसे दूर बहा ले जाने लगी। अपनी तरह मैंने और भी बहुत-से लोगोंको धारामें बहे जाते देखा। कुछ ऐसे नाविक थे जो बराबर खेते भी जा रहे थे; दूसरे कुछ ऐसे थे जिन्होंने अपनी पतवार डाल दी थी। वहां मैंने आद-मियोंसे भरी हुई अनेक बड़ी-बड़ी नावें देखीं। कुछ धारासे संघर्ष करती थीं: कुछने आत्म-समर्पण कर दिया था। जितना ही आगे मैं बढ़ता गया उतना ही मेरा ध्यान अपनी दिशा भूलकर धारामें बहे जाते हुए लोगोंकी ओर अधिकाधिक आकर्षित होता गया और उतना ही मैं अपना मार्ग और लक्ष्य, जिधर जानेका संकेत मुझे किया गया था, भूलता गया। ठीक मंझदारमें, जहाजों और नावोंकी भीड़में, जिन्हे धारा बहाये लिये जा रही थी, मैं अपनी दिशा बिलकुल भूल गया, मैंने भी अपनी पतवार डाल दो। मेरे चारों तरफ हंसते और उल्लास मनाते हुए वे सब लोग थे जो धाराके साथ बहे जा रहे थे: वे सब लोग मुझे तथा परस्पर यह विश्वास दिला रहे थे कि और किसी दिशामें जाना संभव नहीं है। मैंने उनका विश्वास कर लिया और उनके साथ बहने लगा। मैं बहुत दूरतक बहता हुआ चला गया—इतनी दूरतक कि मुझे नदीकी तीव्र धाराओंके गिरनेका जोरदार शब्द सुनाई पड़ने लगा; मैंने समझ लिया कि अब मेरा

नाश निश्चित है । मैंने उस प्रपातमें नावोंको टुकड़े-टुकड़े होते देखा। मुझे अपनी स्मृति हो आई। एक अर्सेसे मैं यह समझनेमें असमर्थ था कि मेरे साथ क्या घटनाएं हुई हैं। मुझे अपने सामने सिवा उस विनाशके और कुछ दिखलाई न देता था, जिसकी ओर मैं तेजीसे बहता चला जा रहा था और जिसका भय मेरे प्राणोंमें समा गया था। मुझे कहीं रक्षा-का कोई स्थान दिखाई न पड़ता था, और मैं नहीं जानता था कि मुझे क्या करना चाहिए; किंतु जब मैंने पीछेकीओर दृष्टि फेरी तो यह देखकर आश्चर्य-चकित रह गया कि असंख्य नौकाएं श्रमपूर्वक लगातार धाराको काटकर बढ़ रही हैं और तब मुझे किनारे का, डांडोंका, और अपनी दिशाका स्मरण आया और मैंने पीछे लौटकर और धाराको चीरकर तट-की ओर बढ़नेमें अपनी शक्ति लगाई।

यह तट ईश्वर था; दिशा परंपरा थी; और तटकी ओर बढ़ने तथा ईश्वरसे मिलनेकी जो स्वतंत्रता मुझे दी गई थी; वही पतवार थी। इस प्रकार जीवनकी शक्ति पुनः मेरे अंदर जाग्रत हुई और पुनः मैंने .जीना शुरू किया।

: १३ :

मै अपने वर्गके जीवनसे दूर हट गया और मैंने स्वीकार किया कि हमारा जीवन कोई जीवन नहीं, बल्कि जीवनका एक स्वांग भर है और वैभव एवं संपन्नताकी जिस स्थितिमें हम रहते हैं वह हमें जीवनको सम-झनेकी संभावनासे वंचित कर देती है। और यह कि जीवनको समझनेके-लिए अपने जैसे परान्नजीवियों और जीवनपर भार बने लोगोंके अपवाद-तुल्य जीवनको नहीं, बल्कि सीधे-सादे श्रमिक लोगोंके जीवनको समझना चाहिए—उन लोगोंके जीवनको, जो जीवनका निर्माण करते हैं। वे जीवनका क्या अर्थ और प्रयोजन समझते हैं, इसपर भी हमें विचार करना चाहिए। हमारे चारों ओर मेहनत-मजदूरी करनेवाले रूसी लोग थे,

इसलिए मैं उनकी ओर झुका और इस बातपर ध्यान देने लगा कि वे जीवनका क्या अर्थ और प्रयोजन समझते हैं। उनके अर्थको शब्दोंमें कहना चाहें तो यों कह सकते हैं : इस संसारमें प्रत्येक मनुष्य ईश्वरकी इच्छासे आया है। और ईश्वरने मनुष्यको इस तरह बनाया है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी आत्माका विनाश व रक्षण कर सकता है। जीवनमें मनुष्यका उद्देश्य अपनी आत्माकी रक्षा करना है और अपनी आत्माकी रक्षा करनेकेलिए उसे 'दिव्य' जीवन बिताना चाहिए; 'दिव्य' जीवन बितानेकेलिए उसे सब सुखोपभोगोंका त्याग करना चाहिए, स्वयं श्रम करना चाहिए, नम्र और दयावान बनना तथा कष्ट सहन करना चाहिए। जनता जीवनका यह अर्थ, धर्म और निष्ठाकी उस संपूर्ण शिक्षासे ग्रहण करती है जो उसे पुरोहितों, पादरियों और जीवित परंपराओंसे मिलती है। यह अर्थ मुझे स्पष्ट था और मेरे हृदयके निकट था। पर कोटि-कोटि असांप्रदायिक लोगोंके लोकधर्मके इस अर्थके साथ बहुत-सी ऐसी बातें भी अविभेद्य रूपसे मिल गई थीं जो मेरी समझमें नहीं आती थीं और जिनसे, मुझे घृणा होती थी। सर्व-साधारण इनको अलग-अलग नहीं कर सकते; मैं भी नहीं कर सकता। और यद्यपि लोगोंके विश्वासके साथ मिली बहुतेरी बातोंपर मुझे आश्चर्य होता था फिर भी मैंने उनकी सारी बातोंको ग्रहण कर लिया; उपसभाओंमें शामिल होने लगा; सुबह-शाम प्रार्थनामें सिर झुकाने लगा, उपवास भी किये। पहले मेरी बुद्धिने किसीका विरोध नहीं किया। जो बातें पहले मुझे असंभव प्रतीत होती थीं, अब मेरे अंदर किसी प्रकारका विरोध पैदा नहीं करती थीं।

श्रद्धाके साथ मेरा पहलेका और अबका संबंध बिलकुल जुदा था। पहले जीवन मुझे अर्थसे भरा प्रतीत होता था और श्रद्धा प्रमेयोंका स्वेच्छाचारपूर्ण कथन बिलकुल अनावश्यक, अनुचित और जीवनसे असंबद्ध मालूम पड़ता था। तब मैंने अपने मनमें पूछा कि आखिर इन प्रमेयोंका अर्थ क्या है और मुझको निश्चय हो गया कि उनका कुछ अर्थ नहीं है। मैंने उन्हें अस्वीकार कर दिया। पर अब इसके प्रतिकूल मैं

दृढ़तापूर्वक जानता था कि (बिना श्रद्धाके) मेरे जीवनका कोई अर्थ नहीं हैं, न कोई अर्थ हो ही सकता है, और श्रद्धाकी वे सब शर्तें अनावश्यक नहीं रह गईं, बल्कि असंदिग्ध अनुभवके द्वारा मैं इस निर्णयपर पहुँचा कि श्रद्धा द्वारा उपस्थित किये जानेवाले ये प्रमेय ही जीवनको एक अर्थ प्रदान करते हैं—उसे सार्थक बनाते हैं। पहले मैं उन्हें अनावश्यक निरर्थक बकवादकी तरह देखता था, पर अब यद्यपि मैं उनको समझता नहीं था फिर भी इतना जानता था कि उनका कुछ अर्थ अवश्य है, और मैंने अपनेसे कहा कि मुझे उनको अवश्य समझना चाहिए।

मैंने अपने मनमें कहा कि विवेकयुक्त संपूर्ण मानवताकी भांति धर्मका ज्ञान भी किसी गोप्य स्रोतमें प्रवाहित होता है। वह स्रोत ईश्वर है, जो मानव-शरीर एवं मानवी-विवेक दोनोंका मूल है। जैसे मेरा शरीर मुझे ईश्वरसे मिला है, वैसे ही मेरा विवेक और जीवनका मेरा ज्ञान भी मुझे ईश्वरसे ही प्राप्त हुआ है। इसलिए जीवनके उस ज्ञानके विकासकी विभिन्न श्रेणियां झूठी नहीं हो सकतीं। जिन सब बातोंमें सर्व-साधारणका सच्चा विश्वास है, वे अवश्य सत्य होंगी; उनकी अभिव्यक्तियां भिन्न-भिन्न तरहसे हुई हों, पर वे असत्य नहीं हो सकतीं। इसलिए अगर वे मेरे सामने असत्यके रूपमें आती हैं तो इसका सिर्फ यही मतलब है कि मैं उनको समझ नहीं पाया हूँ। मैंने अपनेसे यह भी कहा कि हर-एक धर्मका तत्त्व जीवनको ऐसा अर्थ प्रदान करता है जिसे मृत्यु नष्ट नहीं कर सकती। धर्म-द्वारा विलासितामें मरते हुए राजा, शक्तिसे अधिक श्रम करनेके कारण पीड़ित वृद्ध-दास, बुद्धि-हीन बच्चे, ज्ञानवान् वृद्ध, मंद-बुद्धि बुढ़िया, तरुण-सुखी पत्नी, वासनाओंसे संतप्त नौजवान, मतलब—हर तरहकी शिक्षा और जीवन-मर्यादाके आदमियोंके सवालोंका जवाब दिया जा सके, इसके लिए यह समझ लेना जरूरी है कि यद्यपि जीवनके इस नित्य प्रश्न—कि 'मैं क्यों जीता हूँ और मेरे जीवनसे क्या नतीजा निकलेगा?'—का एक ही उत्तर है अर्थात् यह उत्तर तत्त्वतः एक है, परंतु उसके रूप अनेक होने ही चाहिए; और वह जितना ही एक सच्चा और गहरा होगा, प्रयत्न-पूर्वक

की जानेवाली उसकी अभिव्यक्तिमें उतनी ही विचित्रतायें एवं विकृतियां दिखाई पड़ेंगी। ये विचित्रतायें और विकृतियां प्रत्येक व्यक्तिके शिक्षण और मर्यादाके अनुकूल होंगी। परंतु इस तर्कने यद्यपि धर्मके कर्म-कांड पक्षकी अनेक असंगतियोंको मेरी आंखोंके सामने उचित सिद्ध करके पेश किया, फिर भी वह इतना काफी नहीं था कि जीवनके इस महान् मामले—धर्म—में ऐसी बातें करनेकी आज्ञा देता जो मुझे आपत्ति-जनक प्रतीत होती थीं। अपने संपूर्ण अंत:करणके साथ मैं ऐसी स्थितिमें पहुँचनेकी कामना करता था जिसमें सर्व-साधारणके साथ हिल-मिल सकूं और उनके धर्मके कर्म-कांड पक्षका पालन एवं आचरण कर सकूं; लेकिन मैं वैसा कर नहीं सका। मुझे अनुभव होता था कि अगर मैं ऐसा करता हूँ तो मानो अपनेसे ही झूठ बोलता हूँ और जो कुछ मेरे निकट पवित्र है, उसका उपहास करता हूँ। जब मैं इस उधेड़-बुनमें पड़ा हुआ था तब नूतन रूसी धार्मिक लेखकोंने मुझे इस संकटसे बचाया।

इन धर्मवेत्ताओंने जो व्याख्याकी वह यों थी कि हमारे धर्मका मुख्य सिद्धांत चर्च (ईसाई मंदिर-संस्था) की निर्भ्रांतताका सिद्धांत है। यदि हम इस सिद्धांतको मान लेते हैं तो इससे अनिवार्य रूपसे निष्कर्ष निकलता है कि चर्च जो कुछ मानता है वह सब सत्य है। बस, प्रेम-द्वारा ग्रथित सच्चे आस्तिकों और फलत: सच्चे ज्ञानियोंके एक समुदायके रूपमें चर्चको मैंने अपने विश्वासका आधार बना लिया। मैंने अपनेसे कहा कि व्यक्तिको ईश्वरीय सत्य प्राप्त नहीं हो सकता: वह सत्य केवल प्रेम-द्वारा जुड़े हुए लोगोंको संपूर्ण समुदायके सामने ही प्रकट होसकता है। सत्यके पानेकेलिए सबसे जुदा नहीं होना चाहिए और सबसे जुदा होनेकेलिए यह जरूरी है कि मनुष्य प्यार करे और उन सब बातोंको सहन करे, जिनको वह नहीं मानता है।

सत्य प्रेमके सामने अपनेको प्रकट करता है और अगर तुम चर्च या ईसाई धर्म-संस्थाके आचारोंके सामने सिर नहीं झुकाते तो तुम प्रेमका उल्लंघन या तिरस्कार करते हो; और प्रेमका उल्लंघन करनेके कारण तुम

अपनेको सत्य पहचानने और पानेकी संभावनासे वंचित करते हो। इस तर्कमें जो हेत्वाभास या वाक्छल था उसे उस समय मैं देख न सका। मैं नहीं समझ सका कि प्रेमके संग्रथनसे यद्यपि परमोच्च प्रेमकी प्राप्ति हो सकती है, परन्तु वह ईश्वरीय सत्यको देनेमें असमर्थ है। मैं यह भी नहीं देख सका कि प्रेम सत्यकी किसी खास अभिव्यक्तिको भी संग्रथनकी आवश्यक शर्तके रूपमें नहीं रख सकता। मेरे तर्कमें जो दोष थे उन्हें उस समय मैंने नहीं देखा, इसलिए कट्टर धर्म-संस्थाके संपूर्ण आचारोंको मानकर मैं उन्हें कार्यान्वित करने लगा—यद्यपि उनमेंसे अधिकांशका अर्थ मेरी समझमें न आया था। उस समय मैंने अपने संपूर्ण अंत:करणके साथ सब तरहके तर्कों और विरोधोंसे बचनेकी कोशिश की और चर्चके जो वक्तव्य मेरे सामने आये, उन्हें जहां तक हो सका, उचित समझने और सिद्ध करनेका प्रयत्न किया।

ईसाई-धर्म-संस्था (चर्च) के आचारों और विधियोंका पालन करते हुए मैंने अपनी बुद्धिका शमन कर दिया और उस परंपराके आगे सिर झुका दिया जो संपूर्ण मानव-जातिमें पाई जाती है। मैंने अपने को पूर्वजों पिता-माता और दादा-दादीके साथ, जिनसे मैं प्रेम करता था, मिला दिया। उन्होंने तथा मेरे पूर्वजोंने इसी प्रकार चर्चमें विश्वास रखते हुए जीवन बिताया था और उन्होंने ही मुझे उत्पन्न किया था। मैंने लाखों-करोड़ों सामान्य लोगोंके साथ भी अपनेको मिला लिया जिनकी मैं इज्जत करता था। फिर इन आचारोंके पालनमें कोई 'बुराई' तो थी नहीं। (मैं अपनी वासनाओंके प्रति आसक्तिको ही 'बुराई' मानता था)। गिर्जेकी उपासनाओं में शामिल होनेकेलिए जब मैं सुबह जल्दी उठता था तो समझता था कि मैं कोई अच्छा ही काम कर रहा हूँ, क्योंकि अपने पूर्वजों और समकालिकोंके साथ ऐक्य स्थापित करने और जीवनका अर्थ प्राप्त करनेकेलिए, मैं अपने मानसिक अहंकारका त्याग करते हुए अपने शारीरिक सुखोंको छोड़ रहा हूँ। इसी तरह घुटने मोड़कर प्रार्थना कहने, व्रत-उपवास करने ईसाके स्मरणार्थ भोजनमें बैठने (कम्पूनियन) वगैरामें भी अच्छाई देखता था।

चाहे ये त्याग कितने ही नगण्य हों, मैं उनको कुछ अच्छेकेलिए ही करता था। मैं व्रत-उपवास रखता, घरपर तथा गिर्जेमें नियत समयपर प्रार्थना करता एवं अन्य आचारोंका पालन करता था। गिर्जेमें जब धर्मोपदेश होता तो मैं उसके एक-एक शब्दपर ध्यान देता और जहांतक हो सकता उसमें अर्थ ढूंढ़नेकी कोशिश करता था। धर्मोपदेशमें मेरे-लिए सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द ये होते थे : 'हम एक-दूसरेको एक समान प्यार करें।' आगेके इन शब्दोंको—'हम परम पिता, उसके पुत्र और 'होली घोस्ट'[1]की एकतामें विश्वास रखते हैं' मैं दरगुजर कर जाता था; क्योंकि उन्हें समझ न सकता था।

: १४ :

जीवित रहनेकेलिए श्रद्धा रखना उस समय मेरेवास्ते इतना जरूरी हो गया था कि मैंने अचेतन रीतिसे धर्म-शास्त्रके पारस्परिक विरोधों और अस्पष्टताओंको अपनेसे छिपाया। लेकिन आचारों और विधियोंमें इस तरह अर्थ देखनेकी भी एक सीमा थी। प्रार्थनाका एक बड़ा हिस्सा सम्राट् या जार तथा उसके संबंधियोंकी हित-कामनासे भरा हुआ था। मैंने अपने मनको समझानेकी कोशिश की कि चूंकि उनके सामने प्रलोभन अधिक हैं, इसलिए उनकेलिए प्रभुसे प्रार्थना करना उचित ही है। इसी तरह अपने शत्रुओं और बुराइयोंको पांव तले दबा सकनेकी प्रार्थनाके बारेमें मैंने अपने मनको यों समझानेकी कोशिशकी कि यहां 'शत्रु' का अर्थ 'पाप' है। किंतु इस तरहकी प्रार्थनाओंमें उपासना भरी होती थी। पूजा व उपासनाका प्रायः दो-तिहाई हिस्सा इसी प्रकारकी बातोंसे भरा होता था, जिनका या तो कोई अर्थ ही मेरी समझमें नहीं आता था अथवा यदि मैं खींच-तानकर उनका कोई अर्थ निकालनेकी कोशिश

१ 'होली घोष्ट'=ईसाई त्रिमूर्तिका तृतीय पुरुषः जीवात्मा—परमपिता एवं पुत्र (ईसा) से उद्भूत।

करता तो मुझे अनुभव होता था कि मैं झूठ बोल रहा हूँ और इस प्रकार ईश्वरके साथ मेरा जो संबंध है उसे नष्ट कर रहा हूँ और श्रद्धाकी संपूर्ण संभावनाओंसे अपनेको वंचित कर रहा हूँ।

कुछ ऐसा ही अनुभव मुझे मुख्य-मुख्य त्यौहारोंके बारेमें भी होता था। 'सैबेथ'[1]का स्मरण करना, यानी ईश्वरके ध्यान-पूजामें एक दिन बिताना, इसे तो मैं समझ सकता था। लेकिन छुट्टीका मुख्य दिन प्रभु ईसाके सूलीपर पुनः जीवित हो उठनेके स्मारक-रूपमें मनाया जाता था और इस पुनर्जीवनकी सच्चाईको मैं किसी प्रकार कल्पना या अनुभूति न कर पाता था। रविवारकी साप्ताहिक छुट्टीको भी 'पुनर्जीविन दिवस'का नाम दिया गया था। क्रिसमस या बड़ा दिनको छोड़कर शेष ग्यारह बड़े त्यौहार चमत्कारोंके स्मारक थे। इन दिवसोंको मनाते समय मुझे अनुभव होता था कि उन्हीं बातोंको महत्त्व दिया जा रहा है जिनका मेरे निकट कोई महत्त्व न था। मैं मनको समझाने और खींच-तानकर अर्थ निकालने की कोशिश करता या अपनेको प्रलुब्ध करनेवाली इन बातोंको न देखनेके-लिए उधरसे आंख मूंद लेता था।

इनमेंसे ज्यादातर विचार सामान्य और महत्त्व पूर्ण धार्मिक विधियोंको करते समय मेरे दिलमें पैदा हुए थे। इनमें बपतिस्मा और 'कम्यूनियन' (ईसाके स्मरणार्थ भोज: प्रसाद जिसे ईसाई ईसाका रक्त-मांस समझकर ग्रहण करते हैं) की प्रथाएं मुख्य थीं। इनमें कोई ऐसी बात न थी जो दिमागमें न आ सकनेवाली हो; सब बातें साफ और समझमें आने लायक थीं और ऐसी बातें थीं जो मुझे प्रलोभनकी तरफ ले जाती मालूम पड़ती थीं। मैं बड़ी खींचातानीमें पड़ गया कि मुझे अपने प्रति झूठ बोलना चाहिए या उन्हें अस्वीकार कर देना चाहिए।

बहुत वर्षोंके बाद जब पहली बार मुझे 'यूकारिस्ट' (प्रभु ईसाके भोजका प्रसाद ईसाके रक्त-मांस रूपमें) मिला तो मेरे मनकी जो हालत

१ रविवारका दिन, जब ईसामसीह सूलीपर पुनर्जीवित हो उठे थे। रूसमें रविवारको 'पुनर्जीवन (रीजरेक्शन) दिवस' कहा जाता है।

हुई उसे मैं कभी भूल न सकूंगा। पूजा, पापोंकी स्वीकृति और प्रार्थनाएं सब समझमें आ सकनेवाली चीजें थीं और उनसे मेरे मनमें आह्लाद हुआ कि जीवनका अर्थ मेरे सामने खुल रहा है। 'कम्यूनियन'को तो मैंने एक ऐसा कृत्य समझ लिया जो ईसाके स्मरणार्थ किया जाता हो और ईसाकी शिक्षाओंको पूर्णतः ग्रहण करने एवं पापसे मुक्त होनेका निर्देश करता हो। यदि इस व्याख्यामें कुछ बनावट, कुछ कृत्रिमता थी तो मुझे उस वक्त उसका कुछ ध्यान न था। उस सीधे-सादे देहाती पादरीके सामने अपनी आत्माकी संपूर्ण गंदगी निकाल देने और अपने पापोंको स्वीकार करके अपनेको दीन-हीन प्रदर्शित करनेमें मुझे इतनी प्रसन्नता हुई थी; मैं गिर्जेकेलिए प्रार्थनाएं लिखनेवाले अतीतकालके धर्म-पिताओंके साथ तन्मयता प्राप्त करके इतना खुश था; पूर्वकाल और इस समयके आस्तिकोंका सन्निध्य प्राप्त करके मुझे इतनी खुशी हासिल हुई थी कि अपनी व्याख्या व सफाईकी कृत्रिमताकी ओर ध्यान देनेका मुझे मौका ही न मिला। लेकिन जब मैं वेदीके द्वारके निकट पहुँचा और पुरोहितने मुझसे कहलवाया कि 'मुझे विश्वास है कि जो कुछ मैं निगलने जा रहा हूँ वह सचमुच (ईसाका) रक्त और मांस है' तो मुझे अपने दिलमें दर्दका अनुभव हुआ। इसमें केवल असत्यकी झलक ही नहीं थी; यह एक ऐसे आदमी द्वारा की जानेवाली निर्दय मांग थी जिसने कभी जाना ही नहीं कि श्रद्धा क्या चीज है।

आज मैं यह कह रहा हूँ कि यह एक निर्दय मांग थी, लेकिन उस वक्त मैं ऐसा नहीं समझता था। उस वक्त तो मुझे सिर्फ एक गहरी वेदनाका अनुभव था; यह वेदना अवर्णनीय थी। युवावस्थाकी मेरी वह स्थिति अब न थी जिसमें मैं समझता था कि जीवनमें सब-कुछ स्पष्ट है। यह ठीक है कि मैंने श्रद्धाको स्वीकार कर लिया; क्योंकि श्रद्धाको छोड़कर दुनियामें विनाशके अतिरिक्त मैंने और कुछ न पाया था। इसलिए इस धर्म-निष्ठाका त्याग करना असंभव था और इसलिए मैं झुक गया—मैंने माथा टेक दिया। मुझे अपने अंतःकरणमें एक ऐसी अनुभूति प्राप्त हुई जो इस स्थितिको सहन करने योग्य बनानेमें मुझे सहायता देती रही। यह आत्म-

दैन्य और नम्रताकी अनुभूति थी। मैंने अपनेको दीन-हीन बना लिया, और पाखंड व नास्तिकताकी किसी अनुभूतिके बगैर उस रक्त-मांसको निगल गया। ऐसा करते वक्त मेरे मनमें यही इच्छा थी कि मुझे विश्वास रखना चाहिए लेकिन चोट पड़ चुकी थी और मैं फिर दूसरी बार वहां न जा सका।

फिर भी मैं चर्चकी विधियोंका पालन करता रहा और विश्वास करता रहा कि जिन धर्म-सिद्धांतोंका मैं पालन कर रहा हूँ उनमें सत्य निहित है। इसी वक्त मेरे साथ कुछ ऐसी बातें हुईं जिसे आज तो मैं समझता हूँ पर जो उस समय आश्चर्य-जनक मालूम पड़ती थीं।

एक दिन मैं एक अशिक्षितकी बातें सुन रहा था। वह ईश्वर, धर्म, जीवन और मुक्तिके बारेमें कह रहा था। इसी वक्त धर्मनिष्ठाका रहस्य अपने-आप मेरे सामने प्रकट हुआ। मैं जन-साधारणके निकट और भी खिंच गया; जीवन और धर्म-विश्वासके विषय में उनकी सम्मतियां सुनने लगा और दिन-दिन सत्यको अधिकाधिक समझने लगा। यही बात उस वक्त भी हुई जब मैं संतोंकी जीवन-गाथाएं पढ़ रहा था। ये मेरी बड़ी प्रिय पुस्तकें बन गई थीं। इनमें चमत्कारकी जो कथाएं थीं उन्हें मैंने यह समझकर अलग कर दिया कि वे विचारोंको चित्रित करनेवाली कथाएं हैं। बाकी जो बचा उसके अध्ययनने मेरे सामने जीवनका अर्थ प्रकाशित कर दिया। इन पुस्तकोंमें मकैरियस महानकी जीवनी थी; बुद्धकी कथा थी; संत जॉन क्रीसोस्तमके उपदेश थे और कुएंमें पड़े यात्री, सोना प्राप्त करनेवाले संन्यासी, तथा पीटर भटियारेकी कथाएं थीं। उनमें शहीदोंकी कथाएं थीं और सबमें यह घोषणा की गई थी कि मृत्युके साथ जीवनका अंत नहीं होता; ऐसे लोगोंकी भी कथाएं थीं जो अशिक्षित और मूर्ख थे और चर्चकी शिक्षाओंके विषयमें कुछ भी नहीं जानते थे, लेकिन फिर भी वे त्राण पा गये।

लेकिन ज्योंही मैं शिक्षित और विद्वान् आस्तिकोंसे मिला, अथवा उनकी पुस्तकें पढ़ीं, त्योंही अपने विषयमें संदेह, असंतोष और निराशा-पूर्ण संघर्ष एवं विषादसे मेरा मन भर गया, और मैंने अनुभव किया कि

मैं इन लोगोंकी वाणीके अर्थमें जितना ही घुसता हूँ उतना ही मैं सत्यसे दूर जाता हूँ और अथाह खाईकी ओर बढ़ता हूँ।

: १५ :

न जाने कितनी बार मैंने किसानोंकी निरक्षरता और पांडित्य-हीनता पर उनसे ईर्षा की होगी! धर्मके लक्ष्य-संबंधी वक्तव्य मेरेलिए फिजूल और मिथ्या थे, परंतु उनको उनमें कोई झुठाई नहीं प्रतीत होती थी। वे उन्हें स्वीकार कर सकते और उस सत्यमें विश्वास करते थे, जिसमें विश्वास रखनेका मेरा भी दावा था। पर एक मैं ही अभागा और दुखिया ऐसा था जिसको साफ दिखाई दे रहा था कि इस सत्यके साथ असत्यके बड़े बारीक तार एक-दूसरेसे गुथे हुए हैं और मैं इस रूपमें सत्यको स्वीकार नहीं कर सकता।

लगभग तीन सालतक मेरी यह अवस्था रही। शुरू-शुरूमें जब मैं ईसाई-धर्मका प्रारंभिक साधक व विद्यार्थी था, सत्यसे मेरा क्षीण संपर्क था और जो कुछ मुझे साफ मालूम पड़ता था उसका आभास मात्र मैं पा सका था तबतक यह आंतरिक संघर्ष उतना प्रबल न था। क्योंकि जब मैं किसी बातको न समझता तो कह देता—'यह मेरा दोष है, मैं पापी हूँ।' लेकिन ज्यों-ज्यों मैं सत्यको अपनाता गया, और वे मेरे जीवनका आधार बनते गये त्यों-त्यों यह संघर्ष अधिकाधिक दुखदाई और पीड़ा-कारी होता गया। इसके साथ ही समझनेमें अपनी असमर्थताके कारण जो कुछ मैं नहीं समझ सकता उसके और जो कुछ बिना झूठ बोले या अपनेको धोखा दिये समझा ही नहीं जा सकता उसके बीचकी रेखाएं गहरी होती गईं।

इन शंकाओं और पीड़ाओंके बावजूद मैं सनातन ईसाई संप्रदाय-को ग्रहण किये रहा। लेकिन जीवनके ऐसे सवाल उठते रहे जिनका निर्णय करना जरूरी था। कट्टर सनातनी चर्च इनपर जो निर्णय देता

था, वह तो धर्म-निष्ठाके उन मूलाधारोंके ही खिलाफ था जिनपर मेरा जीवन खड़ा था। इस कारण विवश होकर मुझे स्वीकार करना पड़ा कि कट्टर सनातनी संप्रदायमें रहकर सत्यकी प्राप्ति करना असंभव है। इन सवालोंमें एक खास सवाल इस कट्टर ईसाई संप्रदायका अन्य ईसाई संप्रदायोंके प्रति प्रकट होनेवाला दृष्टिकोण और व्यवहार भी था। चूंकि धर्ममें मेरी दिलचस्पी थी, इसलिए मैं संप्रदायोंके अनुयायियोंके संपर्कमें आता रहता था। इसमें कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट, 'पुराने विश्वासी' (ओल्ड बिलीवर्स), सुधारवादी मोलोकस (जो कर्म-कांडकी अनेक विधियोंके विरोधी थे)—मतलब सभी तरहके लोग थे। इनमें मुझे ऊँचे चरित्रके बहुतेरे ऐसे आदमी मिले जो सचमुच धर्मात्मा थे। मैं उनके साथ भाई-चारा स्थापित करना चाहता था—उनको अपने बंधुरूपमें ग्रहण करना चाहता था। पर कट्टर सनातनी चर्चमें स्थिति बिलकुल विपरीत थी। जिस शिक्षाने सबको एक धर्म-निष्ठा और प्रेम-बंधनमें बांधनेका दावा किया था उसी शिक्षाके सर्वोत्तम प्रतिनिधियोंने मुझे बताया कि ये सारे आदमी असत्याचारी हैं, असत्यके बीच रह रहे हैं; उनके जीवनमें जो शक्ति दिखाई देती है, वह शैतानका प्रलोभन-मात्र है और जो कुछ हमारे पास है बस वही सत्य है। मैंने यह भी देखा कि जो लोग हर बात में उनसे सहमत नहीं हैं या उनकी 'हां'-में'हां' नहीं कर सकते वे सब इन कट्टर सनातनियों-द्वारा नास्तिक और पतित समझे जाते हैं। मुझे यह भी दिखाई पड़ा कि जो लोग उनके स्वीकृत बाह्य चिह्नों और प्रतीकोंके द्वारा अपनी धर्म-निष्ठा नहीं प्रकट करते उनके प्रति ये लोग विरोध-भाव रखते हैं और यह स्वाभाविक ही है। पहला कारण तो उनकी यह मान्यता है कि तुम असत्यपर हो और केवल मैं ही सत्यपर हूँ, और इससे निष्ठुर बात एक मनुष्य दूसरेसे कह नहीं सकता। दूसरा कारण यह है कि जो आदमी अपने बच्चों और भाइयोंको प्यार करता हो वह उन लोगोंके प्रति विरोध एवं शत्रुताका भाव रखे बिना नहीं रह सकता जो बच्चों और भाइयोंको झूठी धर्म-निष्ठाकी ओर ले जाना चाहते हों। फिर पौराणिक

ज्ञान जितना ही अधिक बढ़ता है, यह विरोध भाव भी उतना ही अधिक बढ़ता जाता है तब मेरे जैसे आदमीकेलिए जो प्रेम द्वारा ऐक्य एवं मिलनमें सत्यकी स्थिति मानता है, यह बात बिलकुल साफ हो गई कि धर्म-विद्या ठीक उसी चीजका विनाश कर रही है जिसका निर्माण उसे करना चाहिए था।

जब हम देखते हैं कि प्रत्येक संप्रदाय दूसरेके प्रति घृणाका भाव रखता है, केवल अपनेको ही सत्यका अधिकारी मानकर संतुष्ट है तो आश्चर्य होता है कि क्या ये लोग इतना भी नहीं देख सकते कि अगर दोनों-के दावे एक-दूसरेके विरोधी हैं तो उनमेंसे किसीमें भी पूर्ण सत्य नहीं हो सकता और धर्म-निष्ठामें पूर्ण सत्य होना चाहिए। तब मनुष्य मनको यों भुलावा देनेकी चेष्टा करता है कि कोई और बात भी होगी; इसका कुछ और मतलब होगा। मैंने भी यही समझा कि इसका कुछ और मतलब होगा और उस मतलबको पाने एवं समझनेकी कोशिश की। इस विषयपर जो-कुछ भी मुझे पढ़नेको मिला, मैंने पढ़ा और जिनसे भी सलाह-मशविरा कर सकता था, किया। किसीने मुझे उसकी कोई व्याख्या नहीं सुझाई—सिवाय उस व्याख्याके जिसे माननेके कारण 'क' अपनेको ही दुनियामें सर्वश्रेष्ठ मानता है और'ख' अपनेको। हर संप्रदायने अपने सर्वोत्तम प्रतिनिधियों द्वारा मुझे कहा कि हमारा विश्वास है कि सिर्फ हमींको सत्य प्राप्त है और दूसरे सब गलत रास्तेपर हैं और हम उनकेलिए सिर्फ प्रार्थना कर सकते हैं। मैं पुरोहितों; पादरियों, धर्माध्यक्षों और विद्यावयोवृद्ध पंडितोंके पास गया; लेकिन किसीने मुझे इसका मतलब नहीं बताया—सिवाय एक आदमी-के जिसने इसकी पूरी व्याख्या मेरे सामने रखी और कुछ इस तरह रखी कि फिर आगे किसीसे पूछनेका मुझे साहस ही नहीं हुआ। मैंने कहा कि धर्म-निष्ठाकी ओर आकर्षित होनेवाला प्रत्येक नास्तिक (और हमारी सारी तरुण पीढ़ी कुछ इसी तरहकी है) पहले यह सवाल करता है कि लूथर संप्रदायमें या कैथोलिक संप्रदायमें सत्य क्यों नहीं है और कट्टर सनातनी संप्रदायमें ही सारा सत्य क्यों है? आधुनिक युवक शिक्षित होनेके कारण,

किसानोंकी भांति, इस बातसे अपरिचित नहीं है कि प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक संप्रदाय भी इसी प्रकार जोरके साथ कहते हैं कि उनका ही धर्म-विश्वास एक-मात्र सच्चा है। ऐतिहासिक प्रमाणोंको प्रत्येक धर्म व संप्रदाय इस तरह तोड़-मरोड़कर पेश करता है कि वे इस संबंधमें कुछ सिद्ध करनेकेलिए काफी नहीं हैं। मैंने कहा कि क्या यह मुमकिन नहीं है कि धर्म-शिक्षाओंको इससे ऊँचे और श्रेष्ठ ढंगपर ग्रहण किया जाय कि उसको ऊँचाईसे देखने-पर ये सब विभेद और मत-भेद दूर हो जायं, जैसा कि सच्चे आस्तिकोंके साथ होता भी है? हम जिस मार्गपर चल रहे हैं, सदा उसके आगे नहीं बढ़ सकते? क्या हम दूसरे संप्रदायवालोंसे यह नहीं कह सकते कि फलां-फलां तात्त्विक बातों में तो हमारे मत मिलते-जुलते हैं, तफसीलकी बातोंमें भले न मिलें। तात्त्विक और जरूरी बातोंको गैर-जरूरी बातोंपर श्रेष्ठता देकर हम एकताका अनुभव कर सकते हैं।

उस एक आदमीने, जिसका जिक्र मैं ऊपर कर चुका हूँ, मेरे विचारों-का समर्थन किया पर मुझसे कहा कि अगर इस तरहकी छूट दी जाती है तो धर्माधिकारियोंपर यह कलंक लगता है कि उन्होंने हमारे पूर्वजोंके साथ विश्वासघात किया। इससे धर्म-भेद फैलता है, और धर्माधिकारियोंका काम तो यूनानी-रूसी कट्टर सनातनी चर्चकी पवित्रताकी रक्षा करना है जिसे हमने पूर्वजोंसे हासिल किया है।

बस सारी बातें मेरी समझमें आ गईं। मैं एक धर्म-निष्ठाकी खोज कर रहा हूँ, जो जीवनका बल है, और वे लोग कुछ मानवीय उत्तरदायित्वों-को लोगोंकी निगाहमें सर्वोत्तम ढंगसे निभानेका प्रयत्न कर रहे हैं और इन मानवीय मामलोंकी पूर्ति वे एक मानवीय ढंगसे करते हैं। चाहे वे अपने गलती करनेवाले भाइयोंपर करुणा रखनेकी कितनी ही बात करें और सर्वशक्तिमान् ईश्वरके सिंहासनसे उनकेलिए कितनी ही प्रार्थ-नाएँ करें, परंतु मानवीय स्वार्थोंकी पूर्तिकेलिए हिंसा आवश्यक हो उठती है, सर्वदा उसका प्रयोग हुआ है, होता है और होता रहेगा। अगर दो धर्मोंमेंसे प्रत्येक सिर्फ अपनेकोही सच्चा समझता है और दूसरेको झूठा

मानता है तो फिर लोग दूसरोंको सचाईको ओर खींचनेकेलिए अपने धर्म-सिद्धांतोंका प्रचार और उपदेश करते ही रहेंगे। अगर उनके सच्चे चर्चके अनुभवहीन बच्चों या अनुयायियोंको गलत शिक्षा दी जाती है तो फिर चर्चके पास इसके सिवा क्या चारा रह जाता है कि वह ऐसी किताबें जला दे और जो आदमी उसके बच्चोंको गुमराह कर रहा है, उसे हटा दे। ऐसे संप्रदायवादीके साथ क्या किया जाय जो सनातनी चर्चकी रायमें भ्रमात्मक धर्म-सिद्धांतोंकी आगमें जल रहा है और जो जीवनके अत्यंत महत्त्वपूर्ण मामले, यानी धर्मकी निष्ठामें चर्चके बच्चोंको गुमराह कर रहा है? ऐसे आदमीके साथ उसे भेजने अथवा उसका सिर काट लेनेके सिवा और क्या व्यवहार किया जा सकता है? जार एलेक्सिस माइखेलोविचके समयमें लोगोंको जला दिया जाता था यानी उनपर उस वक्तके सबसे कड़े दंड-विधानका प्रयोग किया जाता था, और आज हमारे वक्तमें भी इस समयकी सबसे कड़ी दंड-विधि यानी एकांत कारावास[1] का प्रयोग किया जाता है।

तब मैंने उन बातोंपर ध्यान दिया जो धर्मके नामपर की जाती हैं और भय एवं संतापसे भर गया, और मैंने कट्टर सनातन ईसाई संप्रदायको करीब-करीब बिलकुल छोड़ दिया।

चर्चका दूसरा संबंध युद्ध और फांसीको लेकर जीवनके एक सवालसे था।

उस वक्त रूस लड़ रहा था। और रूसी लोग ईसाई प्रेमके नामपर, अपने मानव-बंधुओंको मारना शुरू कर चुके थे। इसके विषय में न सोचना असंभव था और इस बातकी तरफसे आंख मूंद लेना भी असंभव था कि हत्या एक ऐसा पाप है जो हर धर्मके मूल सिद्धांतोंके विरुद्ध है। इतने पर भी हमारी फौजोंकी सफलताकेलिए गिर्जोंमें प्रार्थनाएं की जाती

१ जब यह लिखा गया था तब ख्याल किया जाता था कि रूससे फांसीकी प्रथा उठा दी गई है।

थीं और धर्मोपदेशक हत्या करने को धर्म-निष्ठासे ही पैदा होनेवाला एक काम मानते थे। फिर युद्ध-कालकी इन हत्याओंके अलावा, युद्धके बाद के झगड़ों-टंटोंमें भी मैंने देखा कि चर्चके अधिकारियों, शिक्षकों और संन्यासियोंने गलती करनेवाले असहाय युवकोंकी हत्याका समर्थन किया। मैंने ईसाई धर्म माननेका दावा करनेवाले आदमियोंके सब कृत्योंपर ध्यान दिया और मेरा दिल दहल गया।

: १६ :

बस मेरा संदेह दूर हो गया और मुझे पूरी तरह विश्वास हो गया कि जिस धर्मको मैंने अंगीकार कर रखा है, उसमें सब सत्य-ही-सत्य नहीं है। शायद ऐसी हालतमें पहले मैं कहता कि वह सबका सब झूठा है, लेकिन अब मैं ऐसा भी नहीं कह सकता था। सारी जनता सत्यका कुछ-न-कुछ ज्ञान रखती है; क्योंकि बिना उसके वह जी नहीं सकती। फिर वह ज्ञान मेरेलिए भी प्राप्य है, क्योंकि मैंने उसकी अनुभूति की है और उसके सहारे जिंदगीके दिन भी बिताये हैं। यह सब था, पर अब मुझे कोई संदेह नहीं रह गया था कि सत्यके साथ इसमें असत्य भी है। जो बातें पहले मुझे घृणाजनक प्रतीत होती थीं वे सब फिर स्पष्ट रूपमें मेरे सामने आईं। यद्यपि मैंने देखा कि जिन झूठी बातोंसे मुझे घृणा होती है, उनका किसानोंमें चर्च व धर्म-संस्थाके प्रतिनिधियोंकी अपेक्षा कम ही मिश्रण है। पर यह तो तब भी साफ हो ही गया कि जनता के धर्म-विश्वास-में सत्यके साथ असत्य भी मिला हुआ है।

पर सवाल उठता है कि सत्य कहांसे आया और असत्य कहांसे आया? सत्य और असत्य दोनों पवित्र कही जानेवाली परंपरा और धर्म-ग्रंथोंमें मौजूद थे। सत्य और असत्य दोनों 'चर्च (ईसाई-धर्म-संस्था) द्वारा लोगोंको दिये गए हैं।

और पसंदगीसे या ना-पसंदगीसे मुझे इन ग्रंथोंका और इन परंपराओं-का अध्ययन और अन्वेषण करना पड़ा—उन्हीं ग्रंथों और परंपराओं-

का जिनका अन्वेषण करनेमें अभी तक मैं इतना हिचकिचाता और डरता था।

मैं उसी धर्म-विद्याकी प्रतीक्षा करने लगा जिसे एक दिन अनावश्यक कहकर मैंने तिरस्कारपूर्वक अस्वीकृत कर दिया था। पहले जब मैं चारों तरफसे जीवनकी ऐसी अभिव्यक्तियोंसे घिरा था जो मुझे स्पष्ट और विवेक-पूर्ण प्रतीत होती थीं तब वह मुझे यह (धर्मविद्या) अनावश्यक मूर्खताओं व असंगतियोंकी एक मालिका-सी प्रतीत होती थी; अब मैं केवल उन्हीं चीजोंको फेंककर सुखी हो सकता था जो मेरे दिमागमें न घुसती थीं। इसी शिक्षापर धार्मिक सिद्धांतका आधार है या कम-से-कम इसके साथ मैंने जीवनके अर्थ एवं प्रयोजनका जो एक-मात्र ज्ञान प्राप्त किया है, उसका अभेद्य संबंध है। मेरे दृढ़ और पुराने मनको यह बात चाहे कितनी ही निरर्थक प्रतीत हो, पर यही मुक्तिकी एक-मात्र आशा थी। इससे समझनेके-लिए बड़े ध्यान और सावधानीके साथ इसकी परीक्षा करनेकी जरूरत थी—उस तरहका समझना नहीं जैसा मैं विज्ञानकी धारणाओंको समझता हूँ: मैं उसकी खोजमें नहीं हूँ और धर्म-निष्ठाके ज्ञानकी विशेषताओं एवं विविध-ताओंको देखते हुए मैं उसकी प्राप्तिकेलिए प्रयत्न कर भी नहीं सकता। मैं हर चीजकी व्याख्या नहीं चाहता। मैं जानता हूँ कि सब वस्तुओंके प्रारंभकी भांति सब वस्तुओंकी व्याख्या भी असीममें निहित है। लेकिन मैं इसे ऐसे ढंगसे समझना चाहता हूँ जिससे जो कुछ अनिवार्यतः अबोध्य है, उसतक पहुँच सकूँ। जो कुछ भी अबोध्य है उसे मैं मानना चाहता हूँ, इसलिए नहीं कि मेरे विवेककी मांग गलत है (वह बिलकुल ठीक है और उससे अलग होकर तो मैं कुछ भी समझ नहीं सकता) बल्कि इसलिए कि मैं अपनी बुद्धिकी सीमाओंको जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी बुद्धि एक सीमातक ही जा सकती है। मैं इस रीतिसे समझना चाहता हूँ कि जितनी भी बातें अबोध्य हैं वे सब स्वयं अपनेको अनिवार्यतः अबोध्य रूपमें मेरे सामने पेश करें—ऐसी चीजों के रूपमें नहीं जिनमें विश्वास करने-केलिए मैं विवशता पूर्वक बाध्य हूँ।

धर्मशिक्षामें सत्य है, इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है; पर यह भी निश्चित है कि उसमें असत्य है और मुझे जानना चाहिए कि कौन-सी बात सत्य है, कौन-सी असत्य; मुझे सत्य और असत्यको अलग-अलग करना चाहिए । इसी काममें मैं अपनेको लगा रहा हूं । मुझे धर्म-शिक्षाम क्या असत्य मिला क्या सत्य मिला और किन नतीजों पर मैं पहुंचा, इसका जिक्र मैं आगे करूँगा, जो अगर कुछ महत्त्वका हुआ और किसीने चाहा तो शायद आगे कहीं प्रकाशित होगा ।

सन् १८७६ ई०

ऊपर के अध्याय मैंने लगभग तीन साल पहले लिखे थे जो छापे जायेंगे ।

थोड़े दिन पहलेकी बात है कि मैं इनको फिरसे देखकर ठीक कर रहा था और उस विचार-शैली और सहानभूतियोंको वापस बुला रहा था, जो बीचमें इनको लिखते समय उदित हुई थीं । मुझे एक सपना दिखाई पड़ा । मैंने जो कुछ अनुभव किया था और जो कुछ वर्णन किया था, उसे इस स्वप्नने घनीभूत और संक्षिप्त रूपमें व्यक्त कर दिया । मैं समझता हूं कि जिन लोगोंने मुझे समझा है, उनके निकट इस स्वप्नका वर्णन कर देनेसे उनके दिमागमें सब बातें ताजी हो जायंगी जिनको मैंने इतने विस्तारसे पहले कहा है । स्वप्न इस प्रकार था :—

मैंने देखा कि मै पलंग पर पड़ा हूं । मैं न आराम में था, न तकलीफमें; मैं पीठके बल लेटा हुआ था । पर मैंने सोचना शुरू कर दिया कि मैं कैसे और किस चीज पर लेटा हुआ हूं—ऐसा सवाल इससे पहले मेरे मनमें पैदा नहीं हुआ था । मैंने अपने पलंगकी तरफ ध्यान दिया और देखा कि मैं एक झूलनेपर लेटा हुआ हूं । झूलनेमें दूर-दूर पर पाटिया लगी हैं जिनपर मेरा शरीर सधा हुआ है । मेरे पांव एक पाटीपर हैं और जांघकी पिंडलियां दूसरी पाटीपर हैं । पांवोंको आराम नहीं मिल रहा था । मुझे इसका ज्ञान-सा था कि वे पाटियां खिसकाई जा सकती हैं । मैंने उनमेंसे

एक पाटीको धकेलकर पावके नीचे किया—शायद मैंने सोचा कि यह ज्यादा आराम-देह होगा। लेकिन वह मेरे धक्केसे जरूरतसे ज्यादा आगे खिसक गई और मैंने उसतक फिर अपना पाँव पहुँचाना चाहा। इस प्रयत्नमें जांघकी पिंडलियोंके नीचे जो पाटी थी वह भी खिसक गई और मेरे पाव अधरमें झूलने लगे। मैंने अपने सारे शरीरको खिसका करके आरामके साथ लेटनेकी कोशिश की। मुझे पूरा विश्वास था कि मैं तुरंत ऐसा कर सकता हूँ; लेकिन मेरे खिसकनेसे कुछ ऐसी गड़बड़ी हुई कि मेरे नीचेकी और भी पाटियां खिसककर एक-दूसरे से उलझ गई और मैंने देखा कि सारा मामला ही बिगड़ता जा रहा है। मेरे शरीरका सारा अधो-भाग खिसककर नीचे लटक रहा था, यद्यपि मेरे पांव जमीनको नहीं छू रहे थे। मैं सिर्फ अपनी पीठके ऊपरी हिस्सेके सहारे लटक रहा था। इससे न सिर्फ तकलीफ हो रही थी; बल्कि मैं डर भी गया था। तभी मैंने अपने-से किसी बातके बारेमें सवाल किया जिसका पहले मुझे खयाल ही नहीं हुआ था। मैंने अपनेसे सवाल किया : मैं कहाँ हूँ, और मैं किस चीज पर लेटा हुआ हूँ? मैंने इर्द-गिर्द देखना शुरू किया। पहले मैंने उस दिशामें दृष्टि डाली जिधर मेरा शरीर लटक रहा था और जिधर मुझे जल्द गिर पड़नेका अंदेशा था। मैंने नीचेकी तरफ देखा; मुझे अपनी आंखोंपर विश्वास न हुआ। मैं ऊँचे-से-ऊँचे मीनार और पहाड़की ऊँचाईपर नहीं, बल्कि ऐसी ऊँचाईपर था कि उसकी कल्पना भी मेरे लिए असंभव थी।

मैं यह भी समझ न सका कि उस निचाईमें, उस अतल-पातालमें मुझे कोई चीज दिखाई भी देती है या नहीं जिसके ऊपर मैं लटका हुआ हूँ और जिसकी तरफ मैं खिंचता जा रहा हूँ। मेरे हृदयकी शिराएं सिकु-ड़ने लगीं और मैं डर गया। उस तरफ देखना भी भयंकर था। जब मैं उधर देखता तो मुझे मालूम होता कि अंतिम पाटीसे भी खिसककर मैं तुरंत गिर जाऊँगा। तब मैंने उधर नहीं देखा। लेकिन न देखना और भी बुरा था; क्योंकि मैं सोचने लगा कि जब मैं अंतिम पाटी-

से खिसककर गिरूंगा, तब क्या होगा। मैंने अनुभव किया कि भयके कारण मेरा अंतिम आश्रय—अंतिम पाटी-भी खिसक रही है और मेरी पीठ धीरे-धीरे नीचेकी तरफ जा रही है। क्षण भर बाद ही मैं गिर जाऊँगा। उसी समय मुझे यह ध्यान आया कि यह सब सत्य नहीं हो सकता, यह सपना है। इससे जग जाओ! मैं अपनेको जगानेकी कोशिश करता हूं पर जाग नहीं पाता। अब मैं क्या करूं? अब मुझे क्या करना चाहिए; मैं इस तरह अपनेसे पूछता हूं और ऊपरकी तरफ नजर दौड़ाता हूं। ऊपर भी अनंत आकाश फैला हुआ है। मैं आकाशकी असीमताको देखता हूं और नीचेकी—पातालकी अतलताको भूलनेकी कोशिश करता हूं और मैं सचमुच उसे भूल जाता हूं। नीचेकी, पातालकी असीमता मुझे डरा देती है; पर ऊपरकी अनंतता आकर्षित करती और बल देती है। मैं देखता हूं कि अतलके ऊपर अब भी अंतिम पाटी मुझसे छूटी नहीं है। जानता हूं मैं लटक रहा हूं; लेकिन अब मैं सिर्फ ऊपरकी ओर देखता हूं और मेरा भय दूर हो जाता है। जैसा कि सपनेमें होता है, एक आवाज सुनाई पड़ती है: 'इधर देखो; यही वह है! बस मैं अधिकाधिक अपने ऊपर अनंत आकाश देखता हूं और मुझे अनुभव होता है कि मैं शांत और स्थिर हो रहा हूं। जो-कुछ घटना घटी है वह सब मुझे याद है और भी याद है कि किस तरह वह सब हुआ; कैसे मैंने अपने पांव बढ़ाये; कैसे मैं खिसककर टंग गया, मैं कितना डर गया था और किस तरह ऊपर देखनेके कारण भयसे मेरी रक्षा हुई। तब मैं अपनेसे पूछता हूं: क्या मैं इस वक्त इसी तरह नहीं लटक रहा हूं? मैं इर्द-गिर्द देखनेकी जगह अपने सारे शरीरसे उस आश्रय-खंडका अनुभव करता हूं, जिसपर मैं पड़ा हुआ हूं! मैं देखता हूं कि अब इस तरह लटका हुआ नहीं हूं कि गिर पड़ूँ, बल्कि दृढ़तापूर्वक स्थित हूं। तब मैं अपनेसे पूछता हूं कि मैं किस प्रकार स्थित हूं? मैं चारों ओर टटोलता हूं; इधर-उधर नजर दौड़ाता हूं और देखता हूं कि मेरे नीचे, मेरी कमरके नीचे भी एक पाटी है और जब मैं ऊपरकी ओर देख रहा हूं तब इसपर सुरक्षित रूपसे लेटा रहता हूं और सिर्फ यही पाटी पहले भी मुझे थामे

हुए थी। तब, जैसा कि सपनोंमें होता है, मैं अपनेको स्थिर रखनेवाले साधन की बनावटकी कल्पना करता हूँ। यह एक बड़ा स्वाभाविक, समझमें आने लायक और अचूक साधन है—यद्यपि जाग्रत व्यक्तिकेलिए बनावटका कोई मतलब नहीं है। अपने स्वप्नमें मुझे आश्चर्यका अनुभव भी हुआ कि इस बात को मैं और पहले ही क्यों न समझ पाया? मालूम पड़ा कि मेरे सिरके ऊपर एक खंभा भी है और उस पतले खंभेकी सुरक्षामें कोई संदेह नहीं किया जा सकता, यद्यपि उसको आश्रय या सहारा देनेवाली कोई दूसरी चीज नहीं है। उस खंभेसे एक दोहरा फंदा नीचे लटक रहा है और यदि मैं उस फंदेके बीचमें अपने शरीरको ठीक तरहसे रखूं और ऊपर देखता रहूँ तो गिरनेका कोई अंदेशा ही नहीं हो सकता। यह सब मुझे स्पष्ट दीख रहा था मैं प्रसन्न और स्थिर था। मुझे जान पड़ा कि कोई मुझसे कह रहा है: 'देखो, इसे याद रखना।'

बस, मैं जग गया।

सन् १८२२ ई०।

संस्मरण

भूमिका

मेरे मित्र पी० बीरूकोवने जब मेरी पुस्तकोंके फ्रांसीसी संस्करणकेलिए मेरी जीवनी लिखनेका काम अपने ऊपर लिया तो उन्होंने मुझसे अपने जीवनके संबंधमें जरूरी बातें लिख भेजनेका अनुरोध किया।

उन्होंने जो अनुरोध किया था, उसे मैं पूरा करना चाहता था, इसलिए मैं मन-ही-मन अपनी जीवनीकी रूप-रेखा तैयार करने लगा। पहलेपहल मेरी स्मृति जीवनीकी अच्छाइयोंकी ओर ही दौड़ी और उन्हें जैसे उभाड़नेकेलिए ही चित्रमें रंग भरनेके समान मैंने अपने चरित्रकी बुराइयां भी दीं। परंतु अपने जीवनकी घटनाओंपर अधिक गंभीरतासे विचार करते हुए मैंने देखा कि ऐसी जीवनी यद्यपि सर्वांशमें मिथ्या न होगी, परंतु वह जीवनपर गलत प्रकाश डालने और उसे गलत रूपमें रखनेके कारण—ऐसे रूपमें, जिसमें अच्छाइयोंपर तो प्रकाश डाला गया है, परंतु बुराइयोंकी ओरसे या तो आंखें ही मूंद ली गई हैं, या उनको ढकनेका प्रयत्न किया गया है—मिथ्या होगी। परंतु जिस समय मैंने अपने दोषोंको जरा भी छिपाए बिना सारी बातें सच्ची-सच्ची लिखनेका विचार किया, उस समय मैं, ऐसी जीवनी पढ़कर लोगोंके मनमें क्या भावना उठेंगी इसकी कल्पना करके कांप उठा। उसी समय मैं बीमार पड़ गया।[1] बीमारीके समय बिस्तरपर पड़े-पड़े मेरा मन बार-बार जीवनकी स्मृतियोंपर दौड़ता था। वे संस्मरण वास्तवमें कंपा देनेवाले थे। उस समय मुझे बिलकुल

१ ये पंक्तियां सन् १९०२में लिखी गई थीं जब टॉल्स्टॉय एक लंबी भारी बीमारीके बाद स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे।

वैसा ही अनुभव हुआ जैसा कि पुश्किनने अपनी कविता "स्मृतियां" में वर्णन किया है: जब हम मरणशील प्राणियोंकी जगती पर दिन भरके बाद शांति छा जाती है, और नगरोंकी सुनसान सड़कों पर शोरोगुलके बाद अर्द्ध पारभासक भूरी रातकी छायाएं नाचने लगती हैं, और दिन भरकी मेहनतके प्रसादस्वरूप निद्रादेवीका आगमन होता है तब मेरेलिए वह समय आता है जब गंभीर नीरवतामें सारी रातके उस अनिवार्य अवकाश-कालमें निद्राहीन पीड़नकी लंबी और सूनी घड़ियां आहिस्ता-आहिस्ता रेंगती हैं।

मेरे हृदयमें पश्चात्तापकी अग्नि जोरोंसे धधक उठी है
मेरा मन खौल रहा है और मेरे थके और दुखते सिर में,
न जाने कितने तीखे विचारों की भीड़ लगी है,

और पुरानी अपयशपूर्ण तथा लज्जाजनक स्मृतिया नीरवताके बीच अपना कष्टकर लेखा-जोखा खोल रही हैं। मैं घृणापूर्वक अपने जीवनके इस वृत्तको देखता हूं, मैं अपनेको शाप देता हूँ, ताड़ता हूं और बार-बार कांप उठता हूं, अनुतापपूर्ण आंसू मेरी आंखोंसे झर-झर गिरते हैं; पर वे मेरी दुःखपूर्ण गाथाकी पंक्तियां हरगिज मिटा नहीं सकते।

इसमें सिर्फ आखिरी पंक्तिमें ही इतना परिवर्तन करना चाहता हूं कि 'दुखपूर्ण' के स्थान पर 'कलंकपूर्ण' शब्द रख दिया जाय।

इन्हीं भावनाओंमें डूबते-उतराते हुए मैंने अपनी डायरीमें निम्न पंक्तियां लिखीं।

६ जनवरी १९०३

"इस समय मैं नरककी यातनाओंका अनुभव कर रहा हूँ। अपने पिछले जीवन की सारी बुराइयां मुझे याद आ रही हैं, ये स्मृतियाँ मेरे जीवनको विषाक्त बना रही हैं और मेरा पीछा नहीं छोड़तीं। लोग इस बातपर खेद प्रकट करते हैं कि मरनेके बाद मनुष्यको अपने जीवनकी घट-नाएं याद नहीं रहतीं। लेकिन यह तो बड़े भाग्यकी बात है। अगर मुझे अपने भावी जीवनमें सब बुरे काम (पाप) याद रहें, जो मैंने इस जीवनमें-

किये हैं, और इस समय मेरी अंतरात्मामें डंक मार रहे हैं, तो मुझे कितनी पीड़ा हो ? यह तो हो ही नहीं सकता कि मुझे अच्छी बातें ही याद रहें, क्योंकि अगर मुझे अपने पुण्यकार्य याद रहें तो अपने पाप-कार्य भी अवश्य याद रहेंगे। यह कितने भाग्यकी बात है कि मृत्युके साथ-साथ सब पिछली बातें भूल जाती हैं और केवल एक प्रकार की चेतना शेष रह जाती है जो ऐसी मालूम होती है कि मानो वह अच्छे और बुरे संस्कारों-से बनी एक वस्तु है, एक विषम भिन्न है, जिसे सम करने पर वह कम या अधिक, सकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकती है।

हां, तो स्मृतियोंका नष्ट हो जाना अत्यंत आनंददायक है। स्मृति रहने पर तो सुखपूर्वक रहना असंभव ही हो जाता। परंतु स्मृतियां नष्ट हो जाने पर तो हम नये जीवन में एक साफ पट्टी लेकर प्रवेश करते हैं, जिस पर हम नये सिरेसे अच्छा और बुरा लिख सकते हैं।

यह सच है कि मेरा सारा जीवन इस प्रकार भीषण रूपसे पाप-मय नहीं था। उसके केवल २० वर्ष ही खराब थे। बीमारीके समय अपने पिछले जीवनका सिंहावलोकन करते हुए मुझे ऐसा मालूम पड़ा था कि यह युग बुराइयोंसे ही भरा पड़ा था; किंतु बात ऐसी नहीं है। इस अवधिमें भी मेरे मनमें अच्छी भावनाएं उठती थीं, परंतु वे अधिक समय तक टिक नहीं पाती थीं और शीघ्र ही वासनाएं उन्हें दबा देती थीं। फिर भी अपने जीवनका सिंहावलोकन करनेसे विशेषकर अपनी लंबी बीमारीके समय-मुझे यह साफ मालूम पड़ा कि यदि मेरी जीवनी उसी तरह लिखी गई जिस तरह अधिकतर जीवनियां लिखी जाती हैं, जिसमें मेरे दोषों, अप-राधों और नीच-कर्मोंके संबंधमें कुछ भी न कहा गया हो, तो वह जीवनी झूठी होगी अतः यदि मेरी जीवनी लिखी ही जाये, तो उसमें सारी बातें सच्ची-सच्ची प्रकट होनी चाहिएं। ऐसी ही जीवनी लिखी जानेपर, चाहे उसे लिखनेमें लेखकको कितनी ही लज्जा क्यों न लगे, पाठकोंके लिए वह लाभ-प्रद हो सकती है। अपने जीवन पर इस दृष्टिसे विचार करते हुए, अर्थात् पाप और पुण्यकी दृष्टिसे विचार करते हुए मैंने देखा कि मैं अपने जीवनको

चार भागोंमें बांट सकता हूँ। प्रथम चौदह साल तककी आयुका (विशेषकर आगेके जीवनकी तुलनामें) भोला-भाला आनंदमय और काव्य-पूर्ण बाल्य-काल, तत्पश्चात् उसके बादके भयानक बीस वर्ष, जो सिर्फ महत्त्वाकांक्षा, दुरभिमान और दुर्वासनाओंमें व्यतीत हुए। उसके बाद विवाहसे लेकर मुझे आत्म-ज्ञान होने तकके १८ वर्ष। यह काल संसारी दृष्टिसे नैतिक कहा जा सकता है, अर्थात् इन १८ वर्षोंमें मैंने उचित रूपसे और ईमानदारीसे गार्हस्थ-जीवन बिताया। यद्यपि इन वर्षोंमें मैं अपने परिवार की हित-चिंता करने, अपनी संपत्ति बढ़ाने, साहित्यिक-क्षेत्रमें उन्नति करने तथा सब तरहका आनंद लूटनेमें ही मग्न रहा, परंतु मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया, जिसकी समाज निंदा करता हो या जिसे बुरा कहता हो। अंतमें बीस वर्षका वह काल है जिसमें मैं रह रहा हूँ और जिसके भीतर ही मुझे आशा है कि मैं मर जाऊंगा। इसी कालके जीवनके दृष्टिकोणसे मैं अपने अतीत पर विचार करता हूँ और इसमें केवल उन बुराइयोंके बुरे प्रभावोंको दूर करनेके सिवाय जिनका आदी मैं पिछले सालोंसे हो गया था, मैं जरा भी परिवर्तन करना न चाहूँगा।

यदि ईश्वरने मुझे जिंदगी और शक्ति दी तो मैं इन चारों कालोंकी बिलकुल सच्ची कहानी लिखूंगा। मैं समझता हूँ कि मेरे ग्रंथोंकी बारह जिल्दोंमें जो कलापूर्ण बकवास भरी हुई है और जिसे लोग आवश्यकता से अधिक महत्त्व देते हैं, उसकी अपेक्षा मेरी यह जीवनी अपनी कमियोंके बावजूद लोगोंकेलिए ज्यादा लाभ-प्रद होगी।

अब मैं यही काम करना चाहता हूँ। पहले मैं अपने आनंदमय बाल्यकालके संबंधमें कुछ कहूँगा; जो मुझे विशेष रूपसे आकर्षित करता है। उसके बाद, चाहे मेरे लिए कितना भी लज्जा-प्रद क्यों न हो, मैं अपने जीवनके दूसरे कालके २० वर्षोंकी भयानक कथा बिना कुछ छिपाये हुए कहूँगा।

[1] उस समय, अर्थात् जनवरी १९०३ तक, टॉल्स्टॉयकी वे रचनाएं जिन्हें रूसमें प्रकाशित करनेकी आज्ञा मिल चुकी थी, बारह भागोंमें प्रकाशित हो चुकी थीं। धर्म, समाजकी समस्याएं युद्ध और हिंसा आदि पर लिखी पुस्तकें आम तौरपर सेन्सरों द्वारा दबा दी गई थीं।

बादमें तीसरे कालके विषयमें लिखूंगा; जो अन्य कालोंकी अपेक्षा कम रोचक है। अंतमें मैं अपने चौथे कालके विषयमें लिखूंगा। इस कालमें मेरी आंखें खुलीं, मैंने सत्यको पहचाना और मुझे जीवनकी सबसे बड़ी अच्छाई और प्रतिदिन निकट आती हुई मृत्युके प्रति आनंदमय शांति प्राप्त हुई।

पुनरुक्ति दोषसे बचनेके लिए अपने बाल्यकालके संबंधमें मैंने जो कुछ लिखा है उसे दुबारा पढ़ लिया है। मुझे दुःख है कि मैंने इसे क्यों लिखा। जो यह सब मैंने लिखा है बहुत बुरा लिखा है और (यदि साहित्यिक भाषामें कहें तो) सच्चे हृदयसे, ईमानदारीसे नहीं लिखा गया। लेकिन इसका कोई उपाय भी नहीं था। क्योंकि पहली बात तो यह कि अपने बचपनका हाल लिखनेके बजाय मैंने अपने बचपनके मित्रोंका हाल लिखना सोचा था और इसके फलस्व-रूप उसमें मेरे और उनके बाल्यकालकी घटनाओंका एक बेजोड़ मिश्रण हो गया। दूसरे जिस समय यह लिखा गया, उस समय मेरी अपनी स्वतंत्र वर्णन-शैली कोई भी न थी और मुझपर दो लेखकों (स्टर्नें) और टौफर[1]का बहुत प्रभाव था।

विशेष रीतिसे मैं अंतिम दो भाग, 'किशोरावस्था' और 'युवावस्था-से अप्रसन्न हूं। इनमें एक तो तथ्य और कल्पनाका अनुचित संमिश्रण है और दूसरे गैरईमानदारीकी भावना व्याप्त है। उस समय मैं जिसे—अपनी लोकतंत्रवादी प्रवृत्तिको—उत्कृष्ट और महत्त्वपूर्ण नहीं मानता था, उसे उत्कृष्ट और महत्त्वपूर्ण चित्रित करनेकी भावना व्याप्त है। मुझे आशा है कि अब मैं जो कुछ लिखूंगा वह अच्छा होगा और विशेष रीतिसे अन्य लोगोंके लिए अधिक उपयोगी होगा।

[टॉल्स्टॉय अपनी आत्मकथा लिखनेका इरादा कभी पूरा नहीं कर सके। अपने संस्मरणोंके अलावा, जो सन् १८७८ में प्रकाशित हुए थे, वे जो कुछ लिखकर छोड़ गये, उनमेंसे कुछ सुंदर अंश यहां दिए जाते हैं।—संपादक]

१ लारेंस स्टर्नें (१७१३-६८) अंगरेजी उपन्यास—लेखक। रोडोल्फ टौफर (१८०१-१८४६), स्विस उपन्यासकार और कलाकार।

संस्मरण

मेरी दादी पेरागेया निकोलेवना (टॉल्स्टॉय) उस अंधे राजकुमार निकोलस इवोनेविच गोर्शकोवकी लड़की थी, जिन्होंने अपार संपत्ति जोड़ रखी थी। दादीके संबंधमें मुझे जितना याद है, उससे मैं कह सकता हूँ कि उनमें थोड़ी बुद्धि थी और उनकी शिक्षा भी थोड़ी ही हुई थी। अपने वर्गकी अन्य महिलाओंकी तरह वह भी रूसी भाषाकी अपेक्षा फ्रेंच अच्छी तरह जानती थीं (यह उनकी शिक्षाकी सीमा थी)। पहले उनके पिताने, फिर उनके पतिने, और बाद में, जहांतक मुझे याद पड़ता है, उनके लड़केने उन्हें बिलकुल बिगाड़ दिया था। लेकिन कुटुंबके सबसे बड़े—बूढ़े व्यक्तिकी पुत्री होनेके कारण सभी उनका संमान करते थे।

मेरे दादा (उनके पति) भी, जहा तक याद है, मामूली बुद्धिके, बड़े नम्र, हंसमुख और केवल उदार ही नहीं, बल्कि बड़े उड़ाऊ और साथ ही बड़े विश्वासी और श्रद्धालु व्यक्ति थे। वेलेव्स्वकी जिलेमें स्थिति पाल्येनी (यासनाया पोल्याना नहीं) में उनकी जागीर पर बहुत दिनोंतक जल्सों, दावतों, नाटकों, नाच-गानों और पार्टियोंकी धूम रही। लेकिन बड़े-बड़े दाव लगाकर ताश खेलने और हर एक आदमीको मुक्तहस्तसे कर्ज या दान देनेकी आदतके कारण और बादमें घरेलू झगड़ोंके फल-स्वरूप उन्होंने अन्तमें अपनी पत्नीकी विशाल जागीर पर कर्जा चढ़ा लिया उनके पेटके भी लाले पड़ने लगे और अन्तमें उनको कजानकी गवर्नरीकेलिए अर्जी देनी पड़ी और वह पद स्वीकार करना पड़ा। यह पद ऐसा था जो उनके ऊंचे कुल और उच्च पदाधिकारियोंसे संबंध रखनेवाले व्यक्तिको मिलनेमें कोई कठिनाई नहीं थी।

यद्यपि उस समय घूस लेना एक साधारण बात थी, लेकिन मैंने सुना है कि (शराबके ठेकेदारोंके सिवा) उन्होंने किसीसे घूस नहीं ली ! यही नहीं, जब कभी उनके सामने इस तरह का प्रस्ताव रखा जाता था, तो वह नाराज होते थे। लेकिन मैंने यह भी सुना है कि मेरी दादी, मेरे दादाको बिना बताये रुपया ले लिया करती थीं !

कजानमें मेरी दादीने अपनी छोटी लड़की पेलागयाका विवाह यशकोवके साथ कर दिया था। उनकी बड़ी लड़कीकी शादी पीटर्सबर्गके काउंट-ऑस्टन-सेकन के साथ हो चुकी थी।

कजानमें अपने पतिकी मृत्यु होनेके बाद और मेरे पिताका विवाह हो जानेके बाद मेरी दादी यास्नाया पोल्यानामें मेरे पिताके साथ रहने लगीं, जहां उनके बुढ़ापेके दिनोंकी मुझे अब भी अच्छी तरह याद है।

मेरी दादी मेरे पिताको और अपने पोतों अर्थात् हम लोगोंको बहुत प्यार करती थीं और हमारे साथ अपना मनोविनोद कर लेती थीं। वह मेरी बुआओंसे भी बहुत प्रेम करती थीं, लेकिन मेरा खयाल है वह मेरी माता को ज्यादा नहीं चाहती थी, क्योंकि वह उन्हें मेरे पिताकेलिए योग्य नहीं समझती थीं। यही नहीं पिताजीका मेरी माताकेलिए जो बहुत ज्यादा प्रेम था उससे उन्हें ईर्ष्या होती थी। नौकरोंके साथ उन्हें कड़ा बर्ताव करनेकी जरूरत ही नहीं पड़ती थी, क्योंकि हरएक आदमी यह जानता था कि वह घरभरमें सबसे बड़ी हैं, इसलिए उन्हें खुश रखनेकी कोशिश करता था। परंतु अपनी नौकरानी गाशा पर वह बहुत अत्याचार करती थीं और उससे यह आशा किया करती थीं कि उससे जो काम न कहा गया हो, वह उसे भी कर रखे। वह उसे तानेमें 'आप' कहकर पुकारा करती थीं और नाना प्रकारसे दुख देती थीं। गाशा (अगाफया निखायलोवना) को मैं अच्छी तरह जानता था और यह विचित्र बात थी कि उसने भी मेरी दादीका स्वाभाव स्वयं ग्रहण कर लिया था और दादीकी सेवामें रहने वाली छोटी-सी लड़कीको तथा उनकी बिल्लीको उसी रीतिसे दुख दिया करती थी, जिस प्रकार मेरी दादी उसे दुःख देती थी।

मास्को जाने और वहां रहनेसे पहले मुझे अपनी दादीकी तीन बातें अच्छी तरह याद हैं। पहली बात उनका कपड़े आदि धोनेका तरीका था। वह अपने हाथों पर एक खास तरहके साबुनसे बहुत-सा झाग उठा लेती थीं, और मैं समझता हूं कि वही अकेली ऐसा कर सकती थीं। जब वह कपड़े धोती थीं तो हमें खासतौरपर उनका कपड़ा धोना देखनेको ले जाया जाता था। संभवतः साबुनके झागों पर हमारा खुश होना और अचंभेसे भर उठना देखकर उन्हें भी आनंद होता था। उनकी सफेद टोपी, उनकी जाकट उनके बूढ़े सफेद हाथ और उनपर उठे हुए असंख्य झाग एवं एक संतोषपूर्ण मुस्कान सहित उनका सफेद मुंह मुझे आज भी याद है।

दूसरी बात उनका बिना घोड़ेकी पीली गाड़ीमें बैठकर पासके छोटे जंगलमें अखरोट बीनने जाना था, जिनकी उस साल इफरातसे पैदावार हुई थी। बिना घोड़ेकी उस गाड़ीको मेरे पिताके सईस खींचकर ले जाते थे। इसी गाड़ीमें हम लोग भी अपने शिक्षक फीडर इवानोविचको साथ लेकर घूमने जाया करते थे। उन घनी और आस-पास उगी हुई झाड़ियोंकी मुझे अब भी याद हैं जिनके बीचसे हमारे पिताके सईस पेट्रूश्का और मत्यूशा उस गाड़ीको, जिसमें मेरी दादी बैठी रहती थीं, खींच ले जाते थे और किस प्रकार वे अखरोटके गुच्छोंसे लदी हुई टहनियोंको जिनमें बहुतसे पके हुए 'अखरोट अपने छिलकोंसे निकल-निकल कर गिर रहे होते थे, उनतक झुका देते थे। मुझे यह भी याद है कि किस प्रकार मेरी दादी उन्हें तोड़तीं और अपने थैलेमें डालती जाती थीं, और किस प्रकार हम बच्चे भी कुछ टहनियां झुकाकर उसी प्रकार खुश होते थे जिस प्रकार फीडर इवानोविच मोटी-मोटी टहनियां झुकाकर हमें अपने बलसे चकित कर देते थे। हम चारों तरफ हाथ लपकाकर अखरोट तोड़ते और जब फीडर इवानोविच टहनियोंको छोड़ देते और वे फिर पहलेकी स्थितिमें पहुंच जातीं उस समय हम देखते थे कि अब भी बहुतसे अखरोट उनमें लगे रह गये हैं, जिन्हें हममें नहीं देखा। मुझे याद है कि जंगलके खुले भागमें कितनी गर्मी और वृक्षोंकी छायासे कितनी ठंडक होती थी।

अखरोटकी पत्तियोंकी तीखी गंध और किस प्रकार हमारी नौकरानियां अखरोटोंको दांतोंसे कड़कड़ाकर खाती थीं, और हम स्वयं भी बराबर मुंह चलाते हुए ताजे मधुर सफेद गूदेको खाते जाते थे, यह सब बातें मुझे अब भी याद हैं।

हम अपनी जेबोंमें, गोदमें और गाड़ीमें अखरोट भर लेते थे। दादी हमें अंदर बुला लेती और हमारी तारीफ करती थीं। हम घर किस प्रकार लौटते थे, और घर लौटने पर क्या होता था, यह सब मुझे जरा भी याद नहीं। मुझे तो सिर्फ दादी, अखरोटके जंगलका खुला भाग, अखरोटके वृक्षोंकी पत्तियोंकी तीखी गंध, दोनों सईस, पीली गाड़ी तथा सूर्य सबकी एक संयुक्त सुखद याद है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि जिस तरह साबुनके झाग वहीं उठ सकते थे जहां मेरी दादी हो, उसी प्रकार झाड़ियां, अखरोट, सूर्य तथा अन्य चीजें भी वहीं हो सकती थीं, जहां मेरी दादी पीली गाड़ी में बैठी हो, और पैट्रश्का और मत्यूशा उसे खींच रहे हों।

सबसे ज्यादा याद मुझे उस रातकी है जो मैंने अपनी दादीके सोनेके कमरेमें लेव स्टीपेनिशके साथ बिताई थी। लेव स्टीपेनिश एक अंधा कहानी सुनानेवाला था। (जिस समय मैंने उसे जाना वह बूढ़ा हो चुका था।) वह मेरे दादाकी प्रभुताके दिनोंकी यादगार था। वह एक दास था जिसे खरीदा ही इसलिये गया था कि वह कहानियां सुनाए। अंधोंकी स्मरण-शक्ति बड़ी तेज होती है और एक या दो बार कोई कहानी सुन लेने पर वह उसे शब्दशः याद हो जाती थी।

वह मकानके ही किसी हिस्सेमें रहता था, लेकिन दिन भर दिखाई नहीं पड़ता था। शाम होते ही वह मेरी दादीके ऊपरके सोनेवाले कमरेमें आ जाता। (यह एक नीचा और छोटा-सा कमरा था जिसमें जानेके लिए सीढ़ियां उतरनी पड़ती थीं।) वह कमरेमें खिड़की पर बैठ जाता जहां उसके लिए मालिककी थालीका बचा हुआ भोजन ला दिया जाता था। वहां वह मेरी दादीका इंतजार किया करता था। मेरी दादी उसके अंधे होनेके कारण उसके सामने ही कपड़े बदल लिया करती थीं। उस दिन जब दादीके कमरेमें

रात बितानेकी बारी थी, वह लंबा गहरे नीले रंगका कोट पहने हुए खिड़की पर बैठा खाना खा रहा था। मुझे याद नहीं कि मेरी दादीने कहां पर कपड़े बदले, उसी कमरेमें या दूसरे कमरेमें या मैं किस प्रकार बिस्तर पर सुलाया गया। मुझे केवल उस क्षणकी याद है जबकि मोमबत्ती बुझा दी गई और एक छोटा लैंप सुनहरी मूर्तियोंके सामने जलता छोड़ दिया गया। मेरी दादी, वह करामाती दादी, जो साबुनके आश्चर्य-जनक झाग उठाया करती थी, सिरसे पैर तक सफेद कपड़े पहने हुए बर्फके समान श्वेत बिछौने पर, सफेद ही चादर ओढ़े और सिरपर सफेद ही टोपी दिये ऊंचे तकियेके सहारे लेटी थीं। उसी समय खिड़कीसे लेव स्टीपेनिश की शांत और मीठी आवाज आई, "क्या मैं कहानी शुरू करूं?" "हां, शुरू करो।" लेव स्टीपेनिशने अपनी शांत, साफ और गंभीर आवाजमें अपनी कहानी आरंभ की। ''प्रिय बहन, उसने कहा, हमें उन सुंदर और रोचक कहानियोंमें से एक कहानी सुनाओ जिन्हें तुम इतनी सुंदरता के साथ सुनाती हो।" शाहजादीने उत्तर दिया—' बड़े शौकसे। अगर आपके स्वामी मुझे आज्ञा दें तो मैं राजकुमार कमरल्जमनकी कहानी सुनाऊं।" सुल्तानकी स्वीकृति मिल जाने पर शाहजादीने इस प्रकार अपनी कहानी आरंभ की—"किसी राजाके एक ही लड़का था··।" इसी प्रकार लेव स्टीपेनिशने भी राजकुमार कमरल्जमनकी कहानी उसी प्रकार अक्षरशः कह सुनाई, जैसी कि किताबमें थी। मैं न तो कुछ समझता था, न सुनता था। मैं तो सफेद वस्त्रोंमें अपनी दादीकी रहस्यमयी मूर्ति और दीवार पर पड़ती हुई उनकी धुंधली छाया तथा सफेद ज्योतिहीन आंखवाले वृद्धको देखनेमें डूबा रहता था। उस वृद्धको यद्यपि मैं इस समय नहीं देखता, परंतु उसकी खिड़कीमें बैठी हुई मूर्ति जिसके मुंहसे कुछ अजीब शब्द निकल रहे थे और वे शब्द उस अंधेरे-से कमरेमें. जिसमें केवल एक ही लैंप टिमटिमा रहा था, अत्यंत एकरस मालूम होते थे, अब भी मेरी आंखोंके सामने नाच रही हैं। शायद मैं लेटते ही सो गया था; क्योंकि

दादीके हाथों पर कपड़े धोते समय साबुनके झागोंको देखकर मुझे सिर आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता हुई।"

* * * *

अपने नानाके संबंधमें टॉल्स्टॉयने बताया है:—

अपने नानाके विषयमें तो मुझे इतना याद है कि प्रधान सेनापतिका ऊंचा पद प्राप्त करनेके कुछ ही दिन बाद वह पोटेम्किनकी भतीजी और रखेली वारवरा एंजिलहार्टसे विवाह करनेसे इन्कार कर देने पर उस पदसे हटा दिये गये। पोटेम्किनके इस प्रस्ताव पर उन्होंने उत्तर दिया—"पोटेम्किनके मनमें किस प्रकार यह विचार उठा कि मैं उस वेश्यासे शादी कर लूंगा?"

राजकुमारी कैथरीन डिट्रीवना ट्रूबेटस्कसे विवाह करनेके बाद मेरे नाना उन्हींकी जागीर यास्नया पोल्यानामें (जो राजकुमारीको अपने पिता सर्जे फिडोरोविचसे मिली थी) रहने लगे।

राजकुमारी एक कन्या—मारया-को छोड़कर शीघ्र ही परलोक सिधार गई। अपनी उस प्यारी पुत्री और उसकी फ्रांसीसी सहेलीके साथ मेरे नाना अपनी मृत्यु (सन् १८२१ तक) वहीं रहे। वह बड़ा कड़ा काम लेने वाले मालिक समझे जाते थे, लेकिन मैंने कभी उनकी क्रूरताको एक भी घटना या नौकरोंको उतना कठोर दंड देनेकी बात नहीं सुनी जितना उन दिनों दिया जाता था। मैं यह जानता हूं कि उनकी जागीर पर ऐसी बातें होती थीं, लेकिन घरके और खेत पर काम करनेवाले दासोंके मनमें जिनसे मैंने कई बार इस विषयमें प्रश्न किया, उनकी महत्ता और चतुरताके लिए इतना सम्मान था कि मैंने अपने पिताकी बुराई तो सुनी लेकिन अपने नानाकी बुद्धिमत्ता, प्रबंध-कुशलता, तथा घरके और खेतोंपर काम करनेवाले दासोंके, विशेषकर घरमें काम करने वालोंके मामलोंमें उनकी अत्यधिक दिलचस्पीके लिए सबके मुंहसे तारीफ ही सुनी। उन्होंने घरेलू दासोंके लिए काफी मकान बनवा दिये और इस बात पर भी हमेशा ध्यान रखा कि उन्हें पर्याप्त भोजन, वस्त्र और आमोद-प्रमोदका सामान

मिलता रहे। छुट्टीके दिन वह उनके लिए झूलों, नाच-रंग (ग्रामीण-नृत्य) तथा आमोद-प्रमोदका भी प्रबंध करते थे।

उस समयके प्रत्येक बुद्धिमान भूमि-पतिके समान वह खेत पर काम करने वाले दासोंकी भलाई और बढ़तीके लिए बहुत चिंतित रहते थे। उनके समयमें ये दास इसलिए फूले-फले कि मेरे नानाके बड़े पद पर होनेके कारण पुलिसवाले उनका बड़ा आदर करते थे और इसीलिए दासोंको अधिकारियोंकी ज्यादतियोंसे बच निकलनेका अवसर मिल जाता था।

वह सौंदर्यके बहुत प्रेमी थे और यही कारण था कि उनके सारे मकान न सिर्फ अच्छे बने हुए और आरामदेह थे, बल्कि बहुत सुंदर और सजे हुए थे। मकानके सामने उन्होंने जो बाग लगवाया था वह बहुत ही सुंदर व सुहावना था। शायद उन्हें संगीतसे भी बहुत प्रेम था; क्योंकि उन्होंने केवल अपनी तथा मेरी माताके लिए एक छोटी परंतु सुंदर संगीत-मंडली जोड़ रखी थी। मुझे याद है कि बागमें जहां नीबूके पेड़ोंकी कतारें मिलती थीं, एक बड़ा पेड़ खड़ा था जिसका तना इतना मोटा था कि तीन आदमी एक साथ उसके चारों ओर लिपट सकते थे। उसी पेड़के नीचे संगीतज्ञों-के बैठनेके लिए बेंचें और मेजें पड़ी हुई थीं। किसी दिन प्रातःकाल मेरे नाना बागमें घूमने निकल जाते और गाना सुनते। उन्हें शिकार करना अच्छा नहीं लगता था। वे फूलों और पौधोंके बड़े प्रेमी थे।

भाग्य-चक्रसे एक दिन वह उसी वारवारा ऐंजिलहार्टके संपर्कमें आये, जिसके साथ विवाह करनेसे इंकार कर देनेके कारण उनका सैनिक जीवन नष्ट हुआ था। उसने राजकुमार सर्जी फीडोरोविच गोलिटसिनसे विवाह कर लिया था, जिसे इस विवाहके उपलक्षमें सब प्रकारका मान और संमान मिला था। मेरे नाना सर्जी फीडोरोविच और फलतः वारवारा ऐंजिलहार्टके इतने निकट संपर्कमें आये कि मेरी माताकी सगाई बचपनमें ही उन दोनोंके दस लड़कोंमेंसे एकके साथ हो गई और दोनों राजकुमारोंने अपने-अपने परिवारके चित्र (जो उनके दासों-द्वारा बनाये गये थे) परस्पर एक-दूसरेको दिये। गोलिटसिन परिवारके ये सब चित्र हमारे पास हैं।

इनमें सर्जी फीडोरोविच का एक चित्र है, जिसमें वह सेंट-ऐण्ड्रू के आर्डर का रिबन पहने हुए हैं तथा सुसंगठित देह और लाल केशोंवाली बारबारा ऐक्षिलहार्टका चित्र भी हैं। परंतु मेरी माताकी सगाई विवाह-रूपमें परिणित न होनी थी, क्योंकि राजकुमार विवाहसे पहले ही तेज बुखारके कारण परलोक सिधार गये।

* * * *

माताजीकी मुझे जरा भी याद नहीं। जिस समय मैं डेढ़ सालका था उसी समय उनकी मृत्यु हो गई। संयोगसे उनका कोई चित्र भी सुरक्षित नहीं रखा गया, अतः मैं उनकी मूर्तिकी कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन यह भी अच्छा ही हुआ, क्योंकि अब मेरे मनमें उनकी अशरीरी कल्पना है और मैं जितना भी कुछ उनके विषयमें जानता हूं, सुंदर है। मैं समझता हूं कि मेरी यह धारणा इसलिए नहीं बनी है कि उनके विषयमें जिस किसीने जो-कुछ भी कहा उनकी अच्छी ही बातें बतानेकी कोशिशकी; बल्कि इसलिए कि उनमें वास्तवमें कुछ ठोस गुण और अच्छाइयां थीं।

मेरी माता सुंदरी तो नहीं थी, परंतु अपने समयकी दृष्टिसे वह अच्छी पढ़ी-लिखी थीं। रूसी भाषाके साथ (जिसे वह उस समयकी प्रथाके विरुद्ध भी शुद्ध लिख सकती थीं) वह फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी और इटालियन चार भाषायें जानती थीं और ललित कलाओंके लिए भी उनके हृदयमें अवश्य प्रेम रहा होगा। वह पियानो बहुत अच्छी तरह बजाती थीं और उन्हींकी समान अवस्थावाली स्त्रियोंने मुझे बताया है कि वह बड़ी रोचक कहानियां सुनाया करती थीं। वह कहानियां गढ़ती जाती थीं और सुनाती जाती थीं। उनके नौकरोंके कथनानुसार यद्यपि उन्हें जल्दी गुस्सा आ जाता था, लेकिन उनका सबसे बड़ा गुण यही था कि उनमें आत्म-संयम बहुत था। "गुस्सेसे उनका चेहरा तमतमा उठता था और वह चीखने-चिल्लाने भी लगती थीं"—उनकी नौकरानी का कहना है—"परंतु उन्होंने कभी कोई अपशब्द मुंहसे नहीं निकाला; वह कोई अपशब्द या गाली जानती ही न थीं।"

मेरे पिताजी और मेरी बुआओंको उन्होंने जो पत्र लिखे थे, उसमें

से कुछ पत्र और मेरे सबसे बड़े भाई निकोलेन्काके आचार-विचारकी जो डायरी वह रखती थीं, वह मेरे पास है। जिस समय उनकी मृत्यु हुई मेरे बड़े भाईकी आयु ६ वर्ष थी, मैं समझता हूं कि शकल-सूरतमें हममेंसे सबकी अपेक्षा वह माताजीसे अधिक मिलते-जुलते थे। उन दोनोंका एक गुण मुझे बहुत प्रिय है। कम-से-कम माताजीके पत्रोंसे तो यही झलकता है कि उनमें यह गुण था और मुझे मालूम है कि यह गुण मेरे भाइयोंमें तो था ही। दोनोंमें यह गुण था कि दूसरे उनके प्रति क्या विचार रखते हैं, इसकी ओरसे वे उदासीन रहते थे। उनमें लज्जा और संकोच तो इतना अधिक था कि वे अपनी मानसिक और नैतिक श्रेष्ठता तथा उच्च शिक्षा भी दूसरोंसे छिपानेकी कोशिश करते थे। वे गुणों पर लज्जित होतेसे प्रतीत होते थे।

मेरे भाईके लिए तुर्गनेवने ठीक ही लिखा है कि उन दोषोंसे परे थे, जो एक बड़ा लेखक होनेके लिए जरूरी हैं। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अंतिम गुण उनमें स्पष्ट रूपमें था।

मुझे याद है कि किस प्रकार एक बेवकूफ और नीच आदमी ने, जो गवर्नरका सहायक था, और जो मेरे भाईके साथ शिकार खेल रहा था, मेरे सामने ही मेरे भाई की खिल्ली उड़ाई, और किस प्रकार मेरे भाईने मेरी ओर देखकर मुस्करा दिया। उसके खिल्ली उड़ानेमें भी उन्हें आनंद मिला था।

माताजीके पत्रोंमें भी मैंने यही गुण पाया है। शायद टाटियाना एले-क्जेण्ड्रोवना एर्गोल्स्कीको छोड़कर जिनके साथ मैंने अपना आधा जीवन बिताया, और जो वास्तवमें अद्भुत नैतिक गुणवाली महिला थीं, मेरी माता निश्चय ही मेरे पिता और उनके परिवारवालोंमें सबसे अधिक नैतिक गुणवाली थीं।

इसके अलावा दोनोंमें एक खास गुण और था, और वही दूसरे लोगों-द्वारा अपनी निंदाके प्रति उनकी उदासीनता का कारण था। वह गुण यह था कि वे कभी दूसरोंको दोष नहीं देते थे। कम-से-कम मेरे भाईमें

तो, जिनके साथ मैंने आधा जीवन व्यतीत किया, यह गुण अवश्य था। किसी व्यक्तिके प्रति अपनी उदासीनता वह बहुत हल्की और मीठी चुटकी (व्यंग) तथा हलकी और मीठी मुस्कराहट-द्वारा व्यक्त करते थे। यही बात मैंने माताजीके पत्रोंमें पाई है और उन लोगोंके मुंहसे भी सुनी है। जो उन्हें जानते थे।

मेरी मातामें एक तीसरा गुण, जो उन्हें उनके आस-पास रहनेवाले लोगोंसे ऊपर उठाता है, उनके पत्रोंमें प्रकट उनकी सादगी और सचाई थी। उन दिनों बहुत बना-चुना कर हृदयके भाव प्रकट करनेका रिवाज-सा हो गया था। अपने परिचितोंमें अनेक संबोधन चल पड़े थे, और उनमें जितनी ज्यादा अतिशयोक्ति होती थी, उतनी ही कम सचाई होती थी।

यह गुण तो मेरे पिताके पत्रोंमें भी पाया जाता है, लेकिन बहुत अधिक मात्रामें नहीं। वह लिखते थे—"मेरी परम मधुर संगिनी ! मैं हर समय तुम्हारे साथ रहनेके आनंदका ही स्वप्न देखता रहता हूँ।" इसमें मुश्किलसे ही कुछ सचाई है। परंतु मेरी माता सदा एक ही प्रकारसे—"मेरे अच्छे मित्र !" लिखती थीं। एक पत्रमें तो वह साफ लिखती हैं:— "आपके बिना दिन पहाड़के समान लगते हैं यद्यपि यदि सच-सच लिखूं तो जब आप यहां होते हैं तो हमें आपके साथ रहनेसे बहुत आनंद नहीं मिलता," पत्रके अंतमें वह हस्ताक्षर भी उसी प्रकार किया करती थीं— "आपकी उपासिका मेरी"।

माताजीका बाल्यकाल कुछ तो मास्कोमें और मेरे सुयोग्य, गुणी और गर्वीले नानाके साथ गांवमें बीता। मुझे बताया गया है कि वह मुझे बहुत चाहती थीं और मुझे 'मेरे प्यारे बेंजामिन' कहकर बुलाया करती थीं।

मैं समझता हूं कि उस व्यक्तिके प्रति जिनके साथ उनकी सगाई हुई थी। और जो बादमें मर गया था, उनका प्रेम वैसा ही रहा होगा, जैसा कि एक लड़की अपने जीवनमें केवल एक बार ही अनुभव करती है। पिताजी के साथ माताजीकी शादी उनके और पिताजीके संबंधियोंने ही तय की थी। मेरी माता धनी थी, यौवनका प्रथम चरण पार कर चुकी थीं और अनाथ

हो चुकी थीं। पिताजी हंसमुख और ऊंचे कुलके युवक थे, परंतु उनकी सारी संपत्ति उनके पिता इल्या टाल्स्टायने पूरी तरहसे नष्ट कर दी थी। उसको उन्होंने इस तरह चौपट कर दिया था कि पिताजीने बादमें उसे लेनेसे भी इन्कार कर दिया। मैं समझता हूँ कि माताजीका मेरे पिताजी पर गूढ़ प्रेम नहीं था, वह उनसे पतिके नाते तथा अपने बच्चोंके पिताके नाते प्रेम करती थीं। जहांतक मुझे मालूम है वह तीन-चार व्यक्तियोंसे ही प्रेम करती थीं। गोलिटसिनके मृत पुत्रसे; जिनके साथ उनकी सगाई हुई थी, उनका विशेष प्रेम था। फिर उनकी विशेष मित्रता अपनी फ्रांसीसी सहेली श्रीमती हेनीशीनके साथ थी जिनके संबंधमें मैं अपनी चाचियोंके मुंहसे सुना करता था। वह मित्रता मालूम पड़ता है बादमें टूट गई। श्रीमती हेनीशीनने मेरी माताके एक संबंधी राजकुमार माइकेल एलेक्जेण्ड्रोविच वोल्कान्स्कीसे विवाह कर लिया था, जो वर्त्तमान लेखक वोल्कान्स्कीके पिता थे।

तीसरे मेरे बड़े भाई कोको (निकोलस) पर उनका सबसे अधिक प्रेम था। वह सबेरेसे शाम तक जो कुछ करते, उसे एक डायरी में रूसी भाषामें लिखती जाती और फिर उन्हें पढ़कर सुनाती थी। इस डायरीसे दो बातें साफ झलकती हैं। एक तो उन्हें अपने पुत्रको अच्छी-से-अच्छी शिक्षा देनेकी भारी उत्कंठा थी, परंतु वह स्वयं यह नहीं जानती थीं कि अच्छी-से-अच्छी शिक्षा कैसी होनी चाहिए। वह उन्हें, उदाहरणार्थ, बहुत भावुक होने और जानवरोंको पीड़ा होते देख चिल्लाने लगनेपर झिड़कतीं, क्योंकि उनका विचार था कि एक मनुष्यको दृढ़ होना चाहिए—कमजोर हृदयका नहीं। भाई साहबका दूसरा दोष, जो वह दूर करना चाहती थीं, उनकी लापरवाही थी।

अपनी बुआओंसे जो बात मुझे मालूम हुई और जिसे मैं भी समझता हूँ कि ठीक ही होगी वह यह है कि वह मेरे प्रति भी प्रेम रखती थीं। इस प्रेमने धीरे-धीरे कोको (मेरे बड़े भाई निकोलस) का स्थान ले लिया, जो मेरे जन्मके बाद उनसे दूर हटते गये और पुरुषोंके हाथमें

सौंप दिये गये। उन्हें तो किसी एकको प्रेम करना ही था; इसलिए एकके स्थानमें दूसरा आ गया।

माताजीका यही प्रेमपूर्ण चित्र मेरे हृदय-पटल पर अंकित है। वह मुझे इतनी विशुद्ध और महान् मालूम पड़ती थीं कि अपने जीवनके मध्यकालमें जब मैं चारों ओर प्रलोभनोंसे घिरा हुआ संघर्ष कर रहा था, मैंने अनेक बार उनकी आत्मासे अपनी सहायताकी प्रार्थना की और उस प्रार्थनाने मेरी बड़ी मदद की।

माताजीके पत्रों और उनके संबंधमें दूसरोंके मुंहसे सुनी हुई बातोंके आधार पर मैं कह सकता हूं कि हमारे पिताजीके परिवारमें उनका जीवन सुखी और आनंदमय था।

परिवारके लोगोंमें मेरी दादी थीं, मेरी बुआएं थीं—काउंटेस अलेक्जेन्ड्राइलीनिशना ओस्टेन-सेकेन भी मेरी बुआ थीं और प्राशेनकाको उन्होंने पाला था। एक दूसरेके रिश्तेकी, जिन्हें हम 'बुआ' पुकारते थे, टाटिआना अलेक्जेन्ड्रावना ऐरगोलस्की थी! वह मेरे दादाके घरमें पली थीं और जीवनभर मेरे पिताके घर रहीं। मेरे शिक्षक फेडोक इवानोविच रेसेल थे, जिनका ठीक-ठीक वर्णन मैंने बचपन में किया है। इसके अलावा हम पांच बहन-भाई थे। निकोलस, सर्जी, मिट्रा, मैं और मेरी बहन माशेंका (मारया) जिसकी पैदाइशके वक्त माताजीकी मृत्यु हो गई थी। माताजीका ६ वर्षों का छोटा-सा वैवाहिक जीवन बहुत सुखी और संतोषपूर्ण था परिवारके सभी लोगोंसे वह स्नेह करती थीं और स्वयं सबके स्नेह की पात्री थीं। उनके पत्रोंसे मालूम होता है कि उस समय उनका जीवन समाजसे विलग रहते हुए बीत रहा था। हमारे निकट परिचितों ओगरेव परिवारवालों और उन संबंधियोंके सिवा, जो घूमते-घामते उधर आ निकलते थे और कोई यास्नाया पोल्यानामें नहीं आता था।

मेरी माताका समय अपने बच्चोंकी देख-रेखमें, घरका प्रबंध करनेमें, घूमनेमें, शामको मेरी दादीको उपन्यास सुनानेमें, रूसोकी

'एमाइल' जैसी गंभीर पुस्तकें पढ़नेमें, जो पढ़ा हो उस पर वाद-विवाद करनेमें, पियानो बजानेमें और मेरी एक बुआको इटालियन भाषा सिखानेमें जाता था।

प्राय: सभी परिवारोंमें ऐसे समय आते हैं, जब कि सब लोग आनंद-से रहते हैं और बीमारी या मृत्यु से पाला नहीं पड़ता। मैं समझता हूं कि मेरी माताकी मृत्युतक हमारे परिवारमें भी ऐसा ही समय रहा। न तो किसीकी मृत्यु ही हुई न कोई सख्त बीमार ही पड़ा और मेरे पिताजी-की बिगड़ी हुई आर्थिक अवस्था भी बहुत-कुछ सुधर गई। हर एक आदमी स्वस्थ, प्रसन्न और मित्र-भावसे रहता था। मेरे पिता हम सबका कहानियों और चुटकुलोंसे मनोरंजन किया करते थे। परंतु जब मैंने होश संभाला वे अच्छे दिन बीत चुके थे, माताजीकी मृत्यु हो चुकी थी और उनके शोककी गहरी छाप हमारे परिवार पर लग चुकी थी।

* * * *

मैंने ऊपर जो कुछ भी लिखा है वह सुनी-सुनाई बातों और चिट्ठी-पत्रियोंके आधार पर लिखा है। अब मैं लिखूंगा कि उस समयके मेरे अनुभव क्या हैं और मुझे क्या-क्या बातें याद हैं। मैं अपने बचपनकी वे बातें नहीं लिखूंगा, जिनकी केवल धुंधली-सी स्मृति है और मैं नहीं कह सकता कि उनमें क्या-तो वास्तविक है और क्या काल्पनिक; बल्कि मैं उस जगहसे लिखना शुरू करूंगा, जहांसे मुझे सब बातों, उन स्थानों और उन आदमियोंकी, जो बचपनसे ही मेरे आस-पास रहते आ रहे थे, साफ-साफ याद है। उन आदमियोंमें स्वभावत: पहला स्थान मेरे पिताका है। इसलिए नहीं कि उनकी मुझपर कुछ छाप पड़ी है, बल्कि इसलिए कि उनके प्रति मेरी आदर-भावना बहुत ज्यादा रही है।

अपने बचपन ही में वह अपने पिताके इकलौते लड़के रह गये थे। उनके छोटे भाई एलेंका रीढ़की हड्डी टूट जानेसे कुबड़े हो गये थे और बाल्यावस्थामें ही मर गये थे। सन् १८१२[1] में मेरे पिताकी आयु

१ जब नेपोलियनने रूस पर हमला किया। अनु०

केवल १७ वर्षकी थी। माता-पिताके बहुत झिड़कने, मना करने, डराने और विरोध करने पर भी वे फौजमें भर्ती हो गये। उस समय मेरी दादीके (जो स्वयं गौशकोव कुलकी राजकुमारी थीं) एक निकट संबंधी राजकुमार एलेक्से इवानोविच गौशकोव युद्ध-मंत्री थे। उनके भाई एँड्रू इवानोविच युद्धकेलिए भेजी गई सेनाके एक भागका संचालन कर रहे थे। मेरे पिता इन्हींके जेट (सहायक) नियुक्त हुए। उन्होंने १८१३-१४ और १८१४के युद्धोंमें भाग लिया। उन्हें खरीतें देकर फ्रांसमें किसी जगह भेजा गया। वहां वह कैद कर लिये गये और तभी छूटे जब हमारी सेनाओंने पेरिसमें प्रवेश किया।

बीस वर्षकी आयुमें मेरे पिता अनजान बच्चे नहीं रह गये थे, क्योंकि १६ वर्ष की अवस्थामें, सेनामें भर्ती होनेसे पहले, उनके माता-पिताने उनका संबंध एक दास-कन्यासे करा दिया था। उस समय ऐसे संबंध युवकोंके स्वास्थ्यके लिए वांछनीय समझे जाते थे। उनसे उन्हें एक पुत्र मिशेका हुआ जो कोचवान बनाया गया। जबतक मेरे पिता जीवित रहे, मिशेंकाकी हालत ठीक रही, परंतु बादमें उसने अपनेको चौपट कर लिया और जब हम भाई बड़े हो गये तब वह बहुधा हमारे पास भीख मांगने आया करता। मुझे अच्छी तरह याद है कि हम लोग उस समय विमूढ़ हो जाते थे, जब मेरा यह भाई, जो हमारे पितासे शकल-सूरतमें हम सब भाइयोंसे अधिक मिलता-जुलता था, अपनी हालत खराब हो जानेके फलस्वरूप हमसे १० या १५ रूबल, हम जो कुछ उसे दे सकते थे, प्राप्त कर बड़ी कृतज्ञता दिखाता।

युद्ध समाप्त होनेके बाद पिताजीने, फौजकी नौकरीसे उकता कर, जैसा कि उनके पत्रोंसे झलकता है, वह नौकरी छोड़ दी और अपने कजान लौट आये, जहां कि मेरे दादा गवर्नर थे। दादाकी हालत उस समय बिलकुल खराब हो चुकी थी। कजानमें मेरी बुआ पेलागेया इलीनिश्ना भी, जिनका विवाह युश्कोवके साथ हुआ था, रहती थीं। थोड़े दिन बाद मेरे दादा मर गये और मेरे पिताके कंधों पर एक ऐसी जागीरका, जिस

पर उसके मूल्यसे कहीं अधिक कर्जा था, बूढ़ी दादीका, जो विलासी जीवन बितानेकी आदी थीं, तथा बुआका व एक और संबंधीका भार आ पड़ा। माताजीके साथ उनका विवाह भी उसी समय तय हुआ था। वह कजानसे यास्नाय पोल्याना आ गए, जहां ६ वर्ष बाद वह विधुर हो गये।

हां, तो मैं अपने पिताके जीवन-चित्र पर ही फिर आता हूं। वह मझोले कद व गठीले बदनके चुस्त आदमी थे। उनका चेहरा बड़ा प्रसन्न दिखाई पड़ता था, परंतु उनकी आंखें उदास रहतीं। उनका मुख्य धंधा खेती और मुकदमेबाजी, विशेषतः मुकदमेबाजी था वैसे तो उस जमानेमें हर एकको ही मुकदमेबाजी करनी पड़ती थी, लेकिन मेरे दादाके झगड़ोंको सुलझानेकेलिए पिताजीको खास तौरसे बहुत मुकदमे लड़ने पड़ते थे। इन मुकदमोंके कारण उन्हें अक्सर घर छोड़कर जाना पड़ता था इसके अलावा वह बहुधा शिकार खेलनेके लिए भी बाहर जाया करते थे। शिकारके समय उनके साथियोंमें उनके मित्र एक मालदार और प्रौढ़ अविवाहित सज्जन किरिवस्की, ग्लेबोव और इस्लेनेव रहते थे। अन्य जागीरदारोंके समान मेरे पिताजीके घरके दासोंमें कुछ ऐसे थे जो उनके कृपा-पात्र थे पेट्रूश्का और मत्यूशा, दोनों भाई उनके विशेष कृपा-पात्र थे। वे दोनों सुंदर, कार्य-पटु तथा होशियार शिकारी थे। मेरे पिताजी जब घर रहते थे तो खेतीका काम और और बच्चोंको देखते-भालते तो थे ही, पढ़ते भी बहुत थे। उनका अपना पुस्तकालय था जिसमें फ्रांसका उच्चकोटिका साहित्य, ऐतिहासिक ग्रंथ, प्राकृतिक इतिहास की पुस्तकें-बफन और क्यूवियरके ग्रंथ थे। मेरी बुआ कहा करती थीं कि मेरे पिताजीका यह नियम था कि वह पुरानी किताबें पढ़े बिना नई किताब नहीं खरीदते थे। यद्यपि उन्होंने बहुत-कुछ पढ़ा, तथापि यह मानना कठिन है कि उन्होंने 'क्रूसेडके इतिहास' और 'पोप' नामक ग्रंथ जो उन्होंने अपने पुस्तकालयके लिए प्राप्त कर रखे थे, सारे-के-सारे पढ़ लिए होंगे।

जहांतक मैं समझता हूं, उन्हें विज्ञानसे अधिक प्रेम नहीं था, परंतु

उनकी जानकारी अपने समयके साधारण आदमियोंके ज्ञानके बराबर थी। ऐलेक्जेन्डर प्रथमके राज्यकालके शुरूके समय तथा १८१३-१८१४ और १८१५ के युद्ध-कालके समयके बहुतसे आदमियोंके समान उन्हें भी उदार दलका तो नहीं कहा जा सकता, परंतु आत्म-सम्मानकी भावनाके कारण ही उनके लिए ऐलेक्जेन्डरके प्रतिक्रियावादी राज्यकालमें या निकोलसके आधीन काम करना संभव नहीं हो सका था। वह अकेले ही नहीं, बल्कि उनके सभी मित्र इसी प्रकार सरकारी नौकरियोंसे अलग रहे थे और निकोलस प्रथमके राज्यकालमें एक तरहसे विद्रोही थे।

मेरे बाल्य-काल और यौवन-काल तक हमारे परिवारका न तो किसी सरकारी अफसरसे परिचय था, न किसी प्रकारका निकट संपर्क ही था। अपने बचपनमें तो मैं इनका महत्त्व न समझ सका। उस समय तो मैं इतनाही जानता था कि पिताजीने कभी किसीके सामने सिर नहीं झुकाया, उनकी वाणी मधुर, नम्र और बहुधा व्यंग और कटाक्षभरी होती थी। उनमें आत्म-गौरवकी यह भावना देखकर ही मेरा उनके प्रति प्रेम बढ़ गया और उन्हें देखकर मुझे अधिक प्रसन्नता होने लगी।

उनके पढ़ने-लिखनेके कमरेमें, मुझे खूब याद है, हम लोग रातको सोते समय उन्हें प्रणाम करने अथवा कभी-कभी सिर्फ खेलने जाते थे। वह कमरेमें चमड़ेके सोफेपर बैठे हुए तमाखू पीते होते थे। हमारे जाने पर वह हमारी पीठ ठोंकते और कभी-कभी जब वह थके होते या दरवाजे पर खड़े अपने क्लर्कसे या हमारे धर्म-गुरु याजीकोव से (जो अधिकतर हमारे यहां रहते थे) बातचीत करते, तो हमें अपने सोफेकी पीठ पर चढ़ लेने देते। उस समय हमें बड़ा आनंद आता था। मुझे यह भी याद है कि किस प्रकार वह नीचे आते और हमें तसवीरें बनाकर देते जो हमें सर्वोत्तम मालूम होती थीं। मुझे यह भी याद है कि किस प्रकार एक बार उन्होंने मुझसे पुश्किनकी कविताएं पढ़वाकर सुनीं जो मुझे बहुत अच्छी लगी थीं और मैंने उन्हें कंठस्थ कर लिया था। वे कविताएं 'समुद्र-की ओर' 'ओ मुक्त तत्त्व जाओ-जाओ!' 'और 'नेपोलियन से' आदि-

आदि थीं। मैं जिस हृदयस्पर्शी और मार्मिक ढंगमें इन कविताओंको पढ़ा करता था, वह उन्हें बहुत ही अच्छा लगता था। मुझसे ये कविताएं सुननेके बाद वह याजीकोवकी ओर, जो वहां बैठे थे, मर्म-भरी दृष्टिसे देखने लगे। मैं समझ गया कि ये मेरे कविता पढ़नेके ढंगको अच्छा समझते हैं, अतः मैं इसपर बड़ा खुश हुआ था।

मुझे याद है कि दोपहरके व रातके भोजनके समय वह बहुत-सी व्यंग और विनोद-भरी बातें और कहानियां सुनाते थे और हमारी दादी, हमारी बुआएं और सब बच्चे उन्हें सुनकर बहुत हंसते थे। मुझे उनकी नगरकी यात्राएं याद हैं। जब वह अपना फ्राक-कोट और तंग मोहड़ीका पाजामा पहनते तो बहुत सुंदर लगते थे। मुझे सबमें अधिक याद उनके शिकारकी व कुत्तोंकी है। शिकारके लिए उनका जाना मुझे खूब याद है। उनके साथ घूमने जाना और उनके शिकारी कुत्तोंका उस लंबी-लंबी घास-से जो कभी उनके पेटमें चुभ जाती और कभी बदन पर लगती, उत्तेजित हो उठना और पूंछ खड़ी करके चारों ओर भागना और मेरे पिताजीका तारीफ करना, ये सब बातें भी मुझे याद हैं। मुझे याद है कि किस प्रकार पहली सितंबरको, शिकारकी छुट्टीके दिन, हम सब गाड़ीमें बैठकर एक जंगलमें गये जहां एक लोमड़ी लाई गई थी, किस प्रकार शिकारी कुत्तोंने उसका पीछा किया और किस प्रकार उन्होंने उसे किसी स्थान पर, जहां हम उन्हें देख नहीं सके, पकड़ लिया। मुझे एक भेड़िया अपने घरके पास लाए जाने और हम सब बच्चोंके नंगे पैर उसे देखने जानेकी भी अच्छी तरह याद है। वह भूरे रंगका विशाल भेड़िया एक गाड़ीमें पैर बांधकर, बंद करके लाया गया था। वह गाड़ीमें चुपचाप लेटा था लेकिन जो भी कोई उसके पास जाता उसकी ओर वह तरेर कर देखता था। बागके पीछे एक जगह भेड़िया गाड़ीसे उतारा गया। कुछ लोगोंने बड़ी-बड़ी लकड़ियों की कमानी (टिकटी) से उसे जमीनपर दबाये रखा और अन्य लोगोंने उसके पैरकी रस्सी खोलनी शुरू की। वह रस्सीसे झगड़ने, उसे झंझोरने और दांतोंसे काटने लगा। आखिर लोगोंने पीछेसे रस्सी खोल दी और

उनमेंसे एक चिल्लाया—'उसे छोड़ दो।' कमानियां उठा दी गई और भेड़िया भी उठ बैठा। वह लगभग दस सैकंड तक चुपचाप खड़ा रहा, परंतु लोग चिल्लाने लगे और शिकारी कुत्तोंको भी खोल दिया गया। बस फिर क्या था, भेड़िया, कुत्ते, घुड़सवार, शिकारी सब सामनेका मैदान पार करके पहाड़के नीचे तराई की ओर दौड़ पड़े। भेड़िया भाग गया। मुझे याद है कि इसपर पिताजी घर आकर नाराज हुए थे।

पिताजी मुझे उस समय सबसे अच्छे लगते थे जब वह सोफेपर दादीके साथ बैठे होते थे और पेशेंस[1] खेलके लिए ताशके पत्ते फैलानेमें उनकी सहायता करते थे। वह हर एक आदमीके प्रति नम्र और मृदुभाषी थे; लेकिन मेरी दादीके प्रति तो खास तौरसे विनम्र थे। मेरी दादी अपनी लंबी ठोड़ी झुकाये और सिर पर एक झालदार टेढ़ी टोपी लगाये, सोफे पर बैठी रहतीं और ताशके पत्ते खोल-खोल कर सामने रखती जाती थीं। बीच-बीच में वह अपनी सोनेकी सुंघनीसे चुटकी भर-भरकर सूंघती जाती थीं।

पिताजीकी दादीके साथ सोफे पर बैठकर उन्हें पेशंस खेलनेमें मदद देनेकी स्मृति सबसे मधुर है। एक बार, मुझे याद है, पेशेंस खेल-के दर्मियान, जबकि मेरी बुआ जोर-जोरसे पढ़ रही थीं, उनमेंसे एकने बीचमें रोका और एक आइनेकी तरफ इशारा किया और धीरेसे कुछ कहा। हम सब उधर देखने लगे। बात यह थी कि एक नौकर टीखोन यह समझकर कि मेरे पिता दीवानखानेमें होंगे, पढ़नेके कमरेमें रखे हुए तमाखूके बड़े थैलेमेंसे तमाखू चुराने जा रहा था। पिताजीने आइनेमें देखा कि वह पंजेके बल चुपके-चुपके जारहा था। बुआएं हंसने लगीं, दादी बड़ी देरतक न समझ सकीं, पर जब समझ गईं तो वे भी मुस्करा दीं। मैं अपने पितासे बहुत मुहब्बत रखता था, लेकिन वह मुहब्बत कितनी गहरी थी, यह तभी मालूम हुआ, जब वह मर गए।

सोफेके पास एक आराम कुर्सीपर खुदाईके कामकी बंदूक बनानेवाली

[1] पेशेंस ताशका एक खेल है जिसे एक आदमी अकेला ही खेलता है।

पेट्रोव्ना कारतूसोंका पट्टा और एक तंग और छोटी-सी जाकट पहने बैठी रहती। अक्सर वह कातती रहती और रीलको दीवारपर दे मारती, जिसकी चोटसे दीवारपर निशान पड़ गये थे। यह पेट्रोव्ना एक व्यापारी स्त्री थी जिसे मेरी दादी बहुत चाहती थीं। वह अक्सर हम लोगोंके यहां रहती थी और दादीके सोफेके पास ही बैठा करती थी। मेरी बुआएं आराम-कुर्सीपर बैठी रहतीं और उनमेंसे एक जोर-जोरसे पढ़ती रहती थीं। एक आराम-कुर्सीपर पिताजीकी प्यारी कुत्ती मिल्काने अपनी जगह बना रखी थी, उसकी काली-काली सुंदर आंखें थीं और चितकबरा रंग था। हम लोग प्रणाम करनेकेलिए रातमें उस कमरेमें जाते थे और कुछ देरके लिए वहां ठहर जाते थे।

* * * *

बचपनमें टबमें नहाने और कपड़ेमें बांधकर[1] डाल दिये जानेके ये मेरे संस्मरण सबसे पहलेके हैं। मे उन्हें एक क्रमसे तो नहीं लिख सकता, क्योंकि मुझे मालूम नहीं कि उनमें कौन-सा पहला और कौन-सा दूसरा है। उनमेंसे कुछके विषयमें तो मुझे यह भी नहीं मालूम कि वे बातें स्वप्नमें हुईं या जाग्रत अवस्थामें। मैं लिपटा-लिपटाया पड़ा रहता; अपने हाथ फैलानेका प्रयत्न करता, परंतु फैला नहीं सकता था। मैं रोता और चिल्लाता। वह रोना-चिल्लाना मुझे स्वयं अच्छा नहीं लगता था, परंतु मैं चुप भी नहीं रह सकता था। उस समय कोई—मुझे याद नहीं कौन—आता और मेरे ऊपर झुकता। यह सब बातें कुछ-कुछ अंधेरेमें होती थीं। मुझे मालूम था कि वह दो ही आदमी हैं। मेरे रोने-चिल्लानेसे वे भी विचलित होते, परंतु जैसा कि मैं चाहता था, मुझे खोलते नहीं थे। अतः मैं जोर-जोरसे चिल्लाता। वे तो यह समझते थे कि इस प्रकार मुझे बांधे रखना आवश्यक है; परंतु मैं इसे बिलकुल अनावश्यक समझता था और यही बात उन्हें सिद्ध करके दिखाना चाहता था। अतः मैं जोर-जोर-

१ रूसमें यह प्रथा थी कि छोटे-छोटे बालकोंको कपड़ेमें इस प्रकार लपेट देते थे कि वह हिल-डुल न सकें और हाथ-पैर न चला सकें।

से रोने और चिल्लाने लगता था। यह चिल्लाहट स्वयं मुझे अप्रिय थी, परंतु मैं इसे रोक नहीं सकता था। मैं इस अन्याय और अत्याचारका—मनुष्योंका नहीं; क्योंकि वे तो मुझपर तरस खाते थे; वरन् भाग्यका अनुभव करता और अपने ऊपर रोता था। लेकिन यह सब क्या था, इसके संबंधमें न तो मैं जानता हूं और न कभी भविष्यमें जाननेकी संभावना ही है कि आया उस समय मुझे बांधकर डाला जाता था जब कि दूध-पीता बच्चा ही था (और मैं अपने हाथ छुड़ानेके लिए प्रयत्न करता रहता था) अथवा लोग मुझे उस समय भी बांधकर डाल देते थे जब कि मैं एक सालका हो गया था ताकि मैं कोई फोड़ा-फुंसी न खुरच डालूं; अथवा यह एक ही अनुभूति है और इस एक ही अनुभूतिमें अन्य बहुत-से अनुभव भी आ मिले हैं; जैसा कि अधिकतर स्वप्नावस्थामें होता है। लेकिन हां, यह तो निश्चित है कि यह मेरे जीवनकी सबसे पहली और सबसे अच्छी स्मृति है। मेरे हृदयपर इसकी जो छाप है, वह रोने-चिल्लानेकी स्मृति-मात्र ही नहीं है, अपितु उन अनुभूतियोंके पेचीदेपन और पारस्परिक विरोधिताकी छाप है। मैं स्वतंत्रता चाहता हूँ, इससे किसीको नुकसान न पहुँचेगा; परंतु सारी बात तो यह है कि मैं, जिसे शक्ति प्राप्त करनेकी आवश्यकता है, कमजोर हूँ, जब कि वे बलवान हैं।

दूसरी स्मृति भी बड़ी सुखद है। मैं एक टबमें बैठा हुआ हूँ। मेरे चारों ओर किसी चीजकी, जिससे वे मेरा छोटा-सा शरीर रगड़ रहे हैं, एक तरहकी गंध फैल रही है जो अप्रिय नहीं है। मेरे विचारसे वह गंध चोकर है, जो मुझे नहलानेके टबमें डाल दी गई है। उस चोकरकी गंध व स्पर्शसे जो सुंदर व अभूतपूर्व संवेदना उठी उसने मुझे जाग्रत कर दिया और पहली बार ही मुझे अपने शरीरका, जिसकी छाती पर पतली-पतली हड्डियां साफ दिखाई दे रही थीं, चिकनी लकड़ीके गहरे रंगके टबका, धाय मांके खुले हाथोंका, भाप उठते हुए और चक्कर खाते हुए गरम पानी-का, छपछपानेकी आवाजका, टबके गीले किनारों पर हाथ फेरनेपर उसकी चिकनाईका भान और बोध हुआ और से सब चीजें मुझे अच्छी लगने लगीं।

यह सोचकर आश्चर्य और भय मालूम होता है कि जन्मसे लेकर तीन सालकी आयु तक, जब मैं स्तन-पान कराकर रखा जाता था, और जब मेरा स्तन-पान करना छुड़ाया गया और जब पहले-पहल घुटनोंके बल चलना, फिर खड़े होकर चलना और और कुछ बोलना सीखा था, मुझे उन दो बातों और अर्थात् नहाने और कपड़ेमें बंधे रहनेके अतिरिक्त बहुत दिमाग खरोचनेपर भी कोई घटना याद नहीं आती। आखिर मैं इस संसारमें कब आया? मेरा जीवन कब आरंभ हुआ? उस समय मैं जिस अवस्थामें था, उसकी कल्पना इतनी सुखद क्यों है? क्यों यह सोचकर कि मृत्युके समय भी ऐसी ही अवस्था हो जायगी जब जीवनकी किसी घटनाकी स्मृति नहीं रहेगी, जिसे शब्दों-द्वारा व्यक्त किया जा सके, हृदय थर्रा उठता है—एक समय यह सोचकर मेरा भी हृदय थर्रा उठता था और अब भी बहुत-से लोगोंका थर्रा उठता है? क्या मैं उस समय जीवित नहीं था जब कि मैं देखना, सुनना, समझना, बोलना, स्तन-पान करना, हंसना और अपनी माताको प्रसन्न करना सीख रहा था? अवश्य मैं जीवित था और आनंदसे रह रहा था। क्या उस समय मेरे पास वे सब चीजें नहीं थीं जिनसे अब मैं जीवित रह रहा हूं? क्या मैंने उसी समय इतना कुछ, इतनी शीघ्रतासे प्राप्त नहीं कर लिया कि उसका सौवां भाग भी बादके सारे जीवनमें फिर प्राप्त नहीं हुआ? पांच सालके बालकसे इस आयुतक मानो मैं एक कदम चला हूं, जन्मके समयसे पांच सालकी आयुतक बड़ा लंबा रास्ता था, गर्भमें आनेके समयसे जन्म होनेके बीच एक लंबी खाई थी, परंतु गर्भमें आनेकी पूर्व-स्थितिसे गर्भमें आने तकका समय एक लंबी खाई नहीं वरन् अगम्य और अचिंत्य है। तीन तत्त्व आकाश, काल, कारण व कार्य हमारी कल्पनाके ही मूर्त्त-रूप हैं। हमारे जीवनका सार इन कल्पनाओं-से परे नहीं है अपितु हमारा सारा जीवन इन कल्पनाओंका अधिकाधिक दास होते जाना और फिर उनसे मुक्त होना ही है।

* * *

टबके बाद जो तीसरा अनुभव आता है वह ईरीमीवनाका है। 'ईरीमीवना' वह हौवा था जिससे लोग हम बच्चोंको डराया करते थे। शायद वे बहुत समयसे इस तरह हमें डराते रहे होंगे, परंतु मुझे जो इसकी याद है, वह यों है : मैं अपने बिस्तरेपर पड़ा हूं और रोजकी तरह प्रसन्न हूँ। इसी समय मुझे पालने-पोसनेवालोंमेंसे कोई आता और एक नई-सी आवाज बनाकर मेरे सामने कुछ कह कर चला जाता। मैं प्रसन्न होनेके साथ-साथ डर भी जाता। मेरे साथ मेरे कमरेमें मेरे-जैसा ही कोई और भी होता। संभवत: वह मेरी बहन मारया थी। उसका पालना भी मेरे ही कमरेमें था। मुझे याद है कि मेरे पालनेके पास एक परदा भी पड़ा हुआ था। मैं और मेरी बहन दोनों इस अद्‌भुत घटना पर जो कि घटनेवाली है, प्रसन्न भी होते और डरते भी। मैं तकियेमें छिप जाता और उसके नीचेसे दरवाजेकी ओर देखता। दरवाजेमेंसे मैं कोई अद्‌भुत और प्रसन्नता देनेवाली वस्तुके आनेकी आशा रखता था। उसी वक्त कोई ऐसे कपड़े और टोपी पहने हुए आता जिसे पहले मैंने कभी न देखा था। मैं इतना तो अवश्य जान जाता कि यह व्यक्ति हमारा परिचित है (वह हमारी बुआ थी या धाय, यह मुझे याद नहीं) और वह किन्हीं बुरे बच्चों और ईरीमीवनाके विषयमें कर्कश स्वरमें न जाने क्या कहता था। मैं सचमुच डर जाता और डरसे और प्रसन्नता-से किलकारियां मारता, परंतु फिर भी उस डरमें मुझे आनंद आता और मैं यह नहीं चाहता था कि मुझे डरानेवाला व्यक्ति यह समझ जाय कि मैंने उसे पहचान लिया है।

इसी ईरीमीवनासे मिलता-जुलता एक और अनुभव है और चूंकि वह इस अनुभवसे अधिक स्पष्ट है, अत: मैं समझता हूं कि वह काफी बादका है। उसका आशय मैं आजतक नहीं समझ सका हूं। इस घटना-में हमारे जर्मन शिक्षक थियौडोर इवानिचका प्रमुख भाग है। किंतु चूंकि उस समयतक मैं उनको नहीं सौंपा गया था, इसलिए मैं समझता हूँ कि मेरी यह घटना मेरी ५ सालकी आयुके पहलेकी होगी। अपनी यादमें

थियोडोर इवानिचके संपर्कमें आनेका यह मेरा पहला अवसर था और यह घटना भी इतने पहले हुई कि इसमें थियोडोरके अतिरिक्त अपने भाइयों या पिताकी जरा भी याद नहीं। यदि इस संबंधमें मुझे किसीका जरा भी खयाल है तो वह मेरी बहनका है और वह भी इसलिए कि वह मेरी ही तरह ईरीमीवनासे डरती थी। इस घटनाके साथ-साथ मुझे एक बात और याद है और वह यह कि हमारे मकानमें एक ऊपरकी मंजिल और थी। मैं उस मंजिलमें कैसे पहुंचा, अपने-आप गया अथवा कोई दूसरा आदमी मुझे ले गया, यह तो मुझे याद नहीं, लेकिन यह मुझे अवश्य याद है कि हममेंसे बहुतोंने वहां पहुंचकर एक-दूसरेका हाथ पकड़कर घेरा डाल लिया। हमारे साथ कुछ स्त्रिया भी थीं, जिन्हें मैं नहीं जानता। परंतु, हा, किसी भी प्रकार मुझे यह मालूम हो गया कि वे धोबिनें थीं। हम सब गोल चक्करमें घूमते और कूदते। थियोडोर ईवानिच बहुत ऊंचे-ऊंचे पैर उठाता और बड़ी आवाजसे जमीन पर पटकता। मैंने उसी समय यह महसूस किया कि यह बात गलत और खेलको बिगाड़नेवाली है। मैं उसे देखता और (शायद) चिल्लाने लगता। बस उसी वक्त सारा खेल खत्म हो जाता।

बस पांच सालतक मुझे इतना ही याद है। इसके अलावा मुझे अपनी धायों, बुआओं, बहनों, भाइयों यहातक कि पिताजी व अपने कमरों और अपने खिलौनोंतककी भी याद नहीं। अपने बाल्य-जीवनकी घटनाओंकी अधिक स्पष्ट स्मृति तो उस समयसे आरंभ होती है, जबकि मैं नीचेकी मंजिलमें थियोडोर ईवानिच तथा बड़े-बड़े लड़कोंके पास पुरुष-गृहमें आ गया।

जब कि मैं नीचे थियोडोर ईवानिच और बड़े लड़कोंके पास आ गया, उसी समय जीवनमें पहली बार और इसलिए अधिक तीव्रतासे मुझे उस भावनाका और उन धार्मिक आचरणोंका अनुभव हुआ, जिसे कर्त्तव्यकी भावना कहते हैं और जिनका पालन हर एकको करना पड़ता है। जन्मसे ही जिन चीजों और जिन आदतोंका मैं आदी हो गया था, उन्हें छोड़ना

कठिन था। मैं स्वभावत: ही उदास रहने लगा, इसलिए नहीं कि मैं अपनी धायसे, बहनसे, और बुआसे अलग हो गया बल्कि यह उदासी इसलिए थी कि मैं अपने पालने, अपने परदे और अपने तकिएसे बिछुड़ गया था। यही नहीं, मैं अपने उस नये जीवनसे, जिसमें कि मैं प्रवेश कर रहा था, कुछ डरने-सा लगा। मैं उस भावी जीवनके अच्छे अंशको ही देखने और थियोडोरके लाड़ और दुलार-भरे शब्दोंमें विश्वास करनेकी कोशिश करता था। मैंने उस अपमान और घृणाके भावकी ओरसे आंखें मूंद लीं जो मुझ सबसे छोटे लड़केके प्रति दूसरे लड़के दिखाते थे। मैं इस बातको अपने मनमें बिठानेकी कोशिश करने लगा कि एक बड़े लड़केका लड़कियोंके साथ रहना शर्मकी बात है और यह भी कि धाय आदिके साथ ऊपरकी मंजिलमें (अर्थात् रनवासमें) जीवन व्यतीत करना अच्छा नहीं है। परंतु फिर भी मेरा मन सदैव उदास रहता था और मैं जानता था कि मेरा भोलापन और आनंद इस बुरी तरह नष्ट हो रहा है और अब वह कभी प्राप्त न होगा। बस, आत्माभिमान और आत्म-गौरव तथा कर्त्तव्य-पालनकी भावना ही ऐसी थी जिसने मुझे रोक रखा। इसी तरह भावी जीवनमें कोई नया काम आरंभ करते समय किसी दुविधामें या धर्म-संकटमें पड़ जाने पर मैं इन्हीं दो भावनाओंसे किसी निश्चय पर पहुं-चता था। मुझे उस हानि पर, जिसकी मैं पूर्ति नहीं कर सकता था, बड़ा दु:ख होता था। यद्यपि मुझसे यह कहा गया था कि अब मुझे लड़कोंके साथ रखा जाना चाहिए; परंतु इस पर भी मैं तो यह कभी विश्वास ही नहीं कर सका कि ऐसा कभी होगा। जो गाउन मुझे पहनाया जाता था उसमें एक पेटी भी कमरमें बाधनेके लिए थी और मुझे ऐसा मालूम होता था मानो इस पेटीमें सदाके लिए ऊपर की मंजिल—(जहां स्त्रियां रहती हैं अथवा यदि राजसी-भाषामें कहें तो रनवास)से मेरा संबंध तोड़ दिया है। उस वक्त जिन सब व्यक्तियोंके साथ मैं रह चुका था, उनका खयाल तो मझे आया नहीं, मगर वहांकी एक मुख्य स्त्रीका जिसके बारेमें इसके पहलेकी कोई बात मुझे याद नहीं है, खयाल आया। वह महिला थी

टाशियाना एलेक्जेंड्रोवना एर्गोल्स्की। मुझे उनका ठिगना और सुसगठित शरीर, काले-काले केश, दयालु और नम्र स्वभाव अब भी याद है। उन्होंने ही वह गाउन मुझे पहनाया था और मुझे छातीसे लगाकर चूमते हुए उन्होंने ही मेरी कमरमें पेटी बांधी थी उस समय मैंने देखा कि वह भी मेरे जैसा अनुभव कर रही थीं कि यह अवमर दुःख और बड़े दुःखका अवसर है। परंतु यह तो होता ही है। उसी समय जीवनमें पहली बार मैंने जाना कि जीवन कोई खेल नहीं वरन् गंभीर वस्तु है।

* * * *

माता-पिताके बाद मेरे जीवन पर जिनका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा, वह टाशियाना ऐलेक्जेंड्रोवना ऐर्गोल्स्की थीं, जिन्हें हम बुआ कहा करते थे। वह मेरी दादीके पीहरके नातेसे कोई बहुत दूरकी रिश्तेदार थीं। अपने माता-पिताकी मृत्युके बाद वह और उनकी बहन लीसा अनाथ हो गईं। लीसाने बादमें पीटर ईवानोविच टाल्स्टायसे विवाह कर लिया था। उनके कुछ भाई थे जिनके पालन-पोषणका प्रबंध उनके संबंधियों-ने किसी प्रकार कर दिया था। दोनों लड़कियोंकी शिक्षा-दीक्षाका भार चर्न जिलेमें अपने क्षेत्रोंमें प्रसिद्ध, अभिमानी और प्रमुख महिला टाशियाना सोमीनोव्ना स्कूरेटोव और मेरी दादीने ले लिया। उन्होंने पर्चियों पर लड़कियोंके नाम लिखकर उन्हें मोड़कर देव-मूर्त्तिके सामने डाल दिया और उसकी प्रार्थना कर लाटरी उठाई। लीसा टाशियाना सोमानोव्ना के हिस्सेमें आई और यह मेरी दादीके। हमारे घरमें वे तेनिश्का पुकारी जाती थीं। दोनोंका जन्म १७६५ ई० में हुआ था। उनकी आयु मेरे पिताके बराबर थी। उन्हें मेरी बुआओंके बराबर ही शिक्षा दी गई थी और घरमें सब लोग उन्हें प्यार करते थे। कोई उनसे नाराज तो हो ही नहीं सकता था; क्योंकि वह दृढ़, उत्साही और आत्म-त्याग करनेवाली, चरित्रवान् महिला थीं। उनके चरित्रकी दृढ़ता एक घटनासे साफ झलकती है जो वह हमें अपने हाथमें हथेलीके बराबर जले स्थानका दाग दिखाकर सुनाया करती थीं। वे सब बच्चे म्यूकियस

स्केवोलाकी कहानी पढ़ रहे थे। उन्होंने आपसमें कहा कि जैसा उसने किया वैसा कोई नहीं कर सकता। तेनिश्काने कहा, 'मैं वैसा कर दिखाऊंगी।' मेरे धर्म-पिता याजीकोवने कहा, 'तुम नहीं कर सकतीं।' और उन्होंने तुरंत एक रूल मोमबत्तीमें गरम किया और जब वह पिघलने लगा और उसमेंसे धुंआ निकलने लगा तो उन्होंने कहा; 'लो, अब इसे अपने हाथ पर लगाओ।' तेनिश्काने अपना खुला हाथ बढ़ा दिया (उस समय लड़कियां आधी बांहोंका कपड़ा ही पहनती थीं) और याजीकोवने वह जलता हुआ रूल उनके हाथ पर दबा दिया। वह खीजीं तो, परंतु उन्होंने अपना हाथ पीछे न हटाया; और उस समय तक उफ न किया जब तक याजीकोवने वह रूल हटा नहीं लिया। इस रूलके साथ ही उनके हाथकी चमड़ी भी उधड़ गई। जब घरके बड़े आदमियोंने पूछा कि यह कैसे जल गया तो उन्होंने कहा कि यह मैंने अपने हाथसे जला लिया है, क्योंकि मैं भी यह देखना चाहती थी कि म्यूकियस स्केवोला-को उस समय कैसा अनुभव हुआ होगा।

सभी बातोंमें वह ऐसी ही थीं। उनमें दृढ़ता थी, साथ ही आत्म-त्याग था। घने, काले और घुंघराले बालोंकी गुथी हुई लटों, काली-काली आंखों तथा प्रफुल्ल मुख-मंडल-सहित वह बड़ी सुन्दर और आकर्षक मालूम पड़ती रही होंगी।

मुझे उनकी जबकी याद है, वह ४०से ऊपर थीं और मेरे मनमें कभी यह विचार भी नहीं उठा था कि वह सुन्दर हैं या नहीं। मैं उन्हें प्यार करता था, उनकी आंखोंको, उनकी मुस्कराहटको, उनके छोटे-छोटे हाथोंको प्यार करता था।

संभवतः वह मेरे पिताको प्यार करती थीं और मेरे पिता भी उनसे प्रेम करते थे, परंतु उन्होंने युवावस्थामें उनसे विवाह नहीं किया। उन्होंने सोचा कि मेरी धनी मातासे विवाह करनेमें उन्हें लाभ होगा। बादमें (अर्थात् मेरी माताकी मृत्युके बाद) उन्होंने इसलिए उनसे विवाह नहीं किया कि वह अपने और पिताजीके तथा हमारे बीच जो

काव्यमय संबंध था, उसे बिगाड़ना नहीं चाहती थीं। एक सुंदर बस्तेमें बंधे उनके कागजोंमें सन् १८३६की यानी मेरी माताकी मृत्युके ६ साल बादकी लिखी हुई निम्न पंक्तियां मिली हैं:—

"१६ अगस्त १८३६। निकोलसने मेरे सामने आज एक विचित्र प्रस्ताव रखा, वह यह कि मैं उससे विवाह कर लूं और उसके बच्चोंकी माता बन जाऊं तथा उन्हें कभी न छोड़ूं। मैंने पहला प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया, लेकिन दूसरेको जीवन रहते निबाहने का वायदा किया है।"

इस प्रकार उन्होंने लिखा था लेकिन उन्होंने इस बातका हमसे या किसी औरसे भी कभी जिक्र नहीं किया। पिताजीकी मृत्युके बाद उन्होंने उनकी दूसरी बात पूरी की। हमारी दो बुआएं और एक दादी थीं, जिनका हमारे ऊपर टाशियाना ऐलेक्जेंड्रोव्नासे अधिक अधिकार था। टाशियाना एलेक्जेंड्रोव्नाको बुआ कहनेकी हमारी आदत पड़ गई थी अन्यथा रिश्ते-में तो वह हमसे इतनी दूर थीं कि मैं उस संबंधकी याद भी नहीं कर सकता। परंतु अपने प्रेमके कारण ही (घायल हंसकी कथामें बुद्धके समान)हमारे पालन-पोषणमें उनका सबसे अधिक हाथ रहा और हम इसे अनुभव करते थे।

मैं तो उनके प्रेममें उन्मत्त हो जाया करता था। मुझे याद है कि किस प्रकार एक बार जब मैं पांच वर्षका था, ड्राइंग रूममें सोफेके पीछेसे हाथ डालकर उनसे लिपट गया और किस प्रकार दुलार और प्यारसे उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैंने भी उनका हाथ पकड़ लिया और उसे चूमने लगा और प्रेमोन्मत्त होकर किलकारियां मारने लगा।

एक अमीर घरानेकी लड़कीके समान ही उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी। वह रूसी भाषासे फ्रांसीसी भाषा अच्छी लिख और बोल सकती थीं। पियानो भी बहुत सुंदर बजाती थीं, परंतु लगभग ३० सालसे उन्होंने उसे छुआ तक नहीं था। जब मैं बड़ा हो गया और मैं भी पियानो बजाना सीखने लगा तो उन्होंने भी उसे बजाना शुरू किया। कभी-कभी जब हम दोनों मिलकर गाते तो वह अपने मधुर स्वरके ठीक उतार-चढ़ाव और ताल-स्वर मिले हुए गानेसे मुझे चकित कर देती।

अपने नौकरोंके प्रति वह बड़ी दयालु थीं। उनसे कभी नाराज होकर नहीं बोलती थीं। उनको मारने और पीटनेका तो विचार भी उन्हें सह्य नहीं था। फिर भी इतना मानती थीं कि दास तो आखिर दास ही है और उनके साथ मालकिन जैसा बर्ताव करती थीं। फिर भी वे लोग उन्हें औरोंसे भिन्न मानते थे और सब उन्हें प्यार करते थे। जब उनकी मृत्यु हुई और वह अंत्येष्टि-क्रियाके लिए गांवमें होकर ले जायी जा रही थीं, उस समय सारे-के-सारे किसान अपने घरोंसे निकल आये और उनके लिए प्रार्थना करवाई।[1] उनका एक विशेष गुण उनका प्रेम था, लेकिन वह प्रेम मैं चाहता था कि ऐसा न होता, तो अच्छा था, केवल एक ही आदमी अर्थात् पिताजीके प्रति था। उसी केंद्रसे फैल कर उनका प्रेम सबको मिलता था। हम यह अनुभव करते थे कि वह हमें हमारे पिताजीके कारण ही प्रेम करतीं हैं। वह उनके-द्वारा ही किसी और को प्रेम करती थीं, क्योंकि उनका सारा जीवन प्रेममय था।

यद्यपि हमारे प्रति अपने प्रेमके कारण उनका हमारे ऊपर अधिक अधिकार था, लेकिन फिर भी हमारी बुआओंका हमारे ऊपर उनसे अधिक कानूनी अधिकार था, और जब पेलागेया इलीनिच्ना हमें कजान ले जाने लगी, तो वह उनका अधिकार मान गई। लेकिन इससे हमारे प्रति उनके प्रेममें तिल-मात्रभी अंतर नहीं आया। यद्यपि वह अपनी बहिन काउंटेस ई० ए० टॉल्स्टॉयके साथ रहती थीं, लेकिन वास्तवमें उनका मन हमारे यहां रहता था। और यथासंभव जल्दी-से-जल्दी हमारे यहां लौट आती थीं। वह अपने जीवनके अंतिम २० दिनोंमें हमारे साथ यास्नया पाल्यानामें रहीं और यह मेरे लिए बड़ी प्रसन्नताकी बात थी। लेकिन हम अपनी प्रसन्नताका मूल्य आंकनेमें असमर्थ रहे थे; क्योंकि सच्ची प्रसन्नता तो

१ उस समय मृत व्यक्तिकी आत्माकी शांतिके लिए पदाधिकारियों-को थोड़ी-सी दक्षिणा देकर प्रार्थना-करानेकी प्रथा तो थी, परंतु किसानों द्वारा किसी महिलाके लिए, जो उनके गांवकी मालकिन भी न हो, ऐसी प्रार्थनाएं कराना असाधारण बात थी।

मौन और अलक्षित होती है। मैं उसकी कदर अवश्य करता था, लेकिन वह पर्याप्त नहीं थी। उन्हें अपने कमरेमें मर्तबानोंमें मिठाई, अंजीर, सौंठ पड़ी हुई मोटी रोटी और खजूर रखनेका शौक था. और वह विशेष रूपसे मुझे ये चीजें दिखलाया करती थीं। मुझे यह बात कभी नहीं भूलती और स्मरण आने पर हृदयमें पश्चात्तापकी एक तीखी चुभन होती है कि इन चीजोंके लिए उनके रुपया मांगने पर मैंने हर बार इंकार ही कर दिया और वह सदा ठंडी सांस खींचकर चुप हो गईं। यह सच है कि मुझे स्वयं रुपयोंकी जरूरत थी लेकिन अब तो मुझे जब कभी भी स्मरण होता है कि मैंने उन्हें रुपया देनेसे इंकार किया तो उस समय मैं सिहर उठता हूं।

तबकी बात है, जब मेरा विवाह हो चुका था और वह भी कमजोर हो चली थीं। एक दिन हम सब उनके कमरेमें जमा थे। मौका देखकर, पीछेको मुंह फेरकर (मैंने उस समय देखा कि वह रोने ही वाली हैं) उन्होंने कहा—'देखो मेरे प्यारे बच्चे, मेरा कमरा अच्छा है और शायद तुम्हें इसकी जरूरत पड़े।' और उनकी आवाज कांपने लगी—'अगर मेरी इसी कमरेमें मृत्यु हुई तो मेरी स्मृति तुम्हें दुःख पहुंचावेगी; अतः मुझे कोई और कमरा दे दो, ताकि मैं इस कमरेमें न मरूं।' मेरे प्रति उनका बचपनसे ही, जब कि मैंने उन्हें समझा भी नहीं था, तबसे, ऐसा ही प्रेम था।

मैं ऊपर कह चुका हूं कि टाशियाना ऐलेक्जेंड्रोव्नाका मेरे जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा था। उन्होंने मुझे पहले-पहल, बचपनमें प्रेमके आध्यात्मिक आनंदका पाठ पढ़ाया। यह शिक्षा उन्होंने पुस्तकों या उपदेशों द्वारा नहीं दी, बल्कि अपने संपूर्ण जीवनसे उन्होंने मुझे प्रेमसे लबालब भर दिया।

मैंने यह देखा और अनुभव किया कि उन्हें प्रेम करनेमें कितना आनंद आता है। मैं स्वयं भी प्रेमके उस आनंदको समझता था। दूसरी बात जो मैंने सीखी, वह शांत और स्थिर जीवनका आनंद था।

[अर्द्ध-विक्षिप्त साधुओंके संबंधमें, जो एक तीर्थ-स्थानसे दूसरे तीर्थ स्थानमें घूमा करते थे और रूसमें जहां-तहां दिखाई पड़ते थे और उनमेंसे कुछ टॉल्सटॉयके घर भी जब-तब आया करते थे, वह लिखते हैं:]

ग्रीशा (जिसका 'बचपन'में उल्लेख है) एक काल्पनिक चरित्र था। इस तरहके 'नाना' साधु हमारे घर पर आते रहते थे। मैं उन्हें बड़े आदर की दृष्टिसे देखना सीख गया था। उसके लिए मैं उन लोगोंका आभारी हूँ जिन्होंने मुझे शिक्षा-दीक्षा दी। यद्यपि उनमेंसे कुछ ऐसे भी थे जो शुद्ध हृदयके नहीं थे और जिनके जीवनमें किसी समय कमजोरियां थीं, परंतु उसके जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य विवेक-शून्य होते हुए भी बहुत ऊंचा था और मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि मैं बचपनसे ही उनकी महानता पहचानने लगा। उनका आचरण एक प्रकारसे मारकस ओरिलिअसके इस कथनकी पूर्ति करता था कि 'एक अच्छे जीवनके लिए घृणा सह लेनेसे बढ़कर संसारमें दूसरी चीज नहीं है।' अच्छे कामोंकी दूसरोंसे प्रशंसा पानेका लोभ इतना हानिकारक और अनिवार्य है कि हमें उन लोगोंके साथ सहानुभूति दिखानी ही चाहिए, जो प्रशंसासे दूर रहनेकी अथवा कभी-कभी दूसरोंके मनमें घृणा करनेकी चेष्टा करते हैं। ऐसे ही साधुओंमेंसे मेरी बहिनको धर्म-माता मेरिया जेरासीमोव्ना, अर्द्ध-मूढ़ एवडोकीमुश्का तथा अन्य थे, जो हमारे घर आया करते थे।

और हम बच्चे इन साधुओंके भजन न सुनकर अपने मालिकके सहायक अकीम नामक मूर्ख आदमीके भजन सुना करते थे। उसके भजन मुझे चकित कर देते थे और हृदय-स्पर्शी लगते थे। इन भजनोंमें वह ईश्वरको एक जीवित मनुष्य के समान संबोधन करता और हृदयमें पक्के विश्वास और धारणाके साथ कहता—तुम मुझे अच्छा करने चले हो, तुम मुझे मुक्ति दिलाने वाले हो।' उसके बाद वह कयामतके दिनके संबंधमें भजन गाता कि किस प्रकार ईश्वर उस दिन न्याय और अन्यायको अलग करेगा और पापियोंकी आंखोंमें पीली रेत भर देगा।

मेरे भाइयों और बहनोंके अतिरिक्त मेरी ही उम्रकी एक लड़की ड्यूनेश्का टेमीअशोव भी हमारे घरमें तब रहती थी, जब मैं पांच वर्षका था। यह बताना जरूरी है कि वह कौन थी और किस प्रकार हमारे यहां आई। जब हम बच्चे थे तो उस समय हमारे घरपर हमारे फूफा यशकोव जब-तब आया करते थे। उनकी काली मूंछ, गलमुच्छा और चश्मा हम बच्चोंको अचंभेमें डाल देता था। दूसरे सज्जन मेरे धर्म-पिता एस. आई. याजीकोव थे। उनके शरीरसे हमेशा तमाखूकी बदबू आया करती थी, और मुंह पर लटकती हुई चमड़ीकी वजहसे उनकी सूरत बड़ी भद्दी लगती थी। वह अजेब-अजीब तरहसे मुंह मोड़ा करते थे। इन दो सज्जनों तथा हमारे दो पड़ोसियों ओगरेव और इस्लेनेवके अतिरिक्त हमारी माताके (पीहरके रिश्तेके) एक और दूरके संबंधी आया करते थे। यह एक धनी अविवाहित सज्जन थे। उनका नाम टेमीअशोव था। वह पिताजीको भाई कहकर पुकारा करते और उनके प्रति अगाध प्रेम रखते थे। वह यास्नया पाल्यानासे ४० वर्स्ट[1] (लगभग २७ मील) की दूरीपर पीरोगोव नामक गांवमें रहते थे। एकबार वह वहांसे सूअरके छोटे-छोटे दूध पीते बच्चे लाये जिनकी पूछें गोल लिपटी हुई थीं। उन्हें नौकरोंके कमरेमें एक बड़ी रकाबीमें रख दिया मेरे मनमें टेमीअशोव, पीरोगोव और सूअरके बच्चे तीनोंका चित्र एक ही साथ जुड़ गया।

इसके अतिरिक्त टेमीअशोव हम बच्चोंको इस कारण भी अच्छे लगते कि वह पियानों पर नाचनेकी एक गत (बस वह केवल वही एक गत बजा भी सकते) बजाते थे और हम सब बच्चोंको उस पर नचाते थे। हम पूछते कि यह कौन-सा नाच है तो कहते इस गत पर सब तरहके नाच नाचे जा सकते हैं। हम लोग भी ऐसा मौका पाकर बड़े प्रसन्न होते थे।

एक दिन एक जाड़ेकी रात थी। हम चाय पी चुके थे और शीघ्र ही बिस्तरोंपर ले जाये जाने वाले थे। मेरी आंखें नींदके मारे झंपी जा रही थीं। उस समय अचानक नौकरोंके मकानोंकी ओरसे बड़े दरवाजेसे

१ एक वर्स्ट ३५०० फीटका होता है

होकर एक आदमी ड्राइंग रूममें जहां हम सब केवल दो मोमबत्तियोंके धुंधले प्रकाशमें बैठे हुए थे, हलके-हलके पैर रखता हुआ जल्दीसे आया और बीच कमरेमें पहुँचते ही घुटनोंके बल गिर पड़ा। उसके हाथोंमें जो सुलगती हुई सिगरेट पाइप थी, वह जमीन पर गिर पड़ी और उससे जो चिनगारियां उड़ीं, उनका प्रकाश उसके मुख पर पड़ा। हमने देखा कि वह टेमीअशोव है। वह पिताजीके सामने घुटने टेककर कुछ प्रार्थना कर रहा था। मैं नहीं जानता कि उसने क्या कहा, क्योंकि मैं उसकी बात सुन ही न सका। मुझे तो बादमें यह मालूम हुआ कि वह मेरे पिताके सामने घुटने टेककर इसलिए बैठा कि वह अपनी नाजायज लड़की ड्युनेश्काको, जिसके विषयमें वह पहले भी पिताजीसे कह चुका था, उनके पास लाया था और उनसे प्रार्थना कर रहा था कि वह उसे अपने पास रखें और अपने बच्चोंके साथ शिक्षा दें। उसके बादसे ही हमने अपने बीच उस चौड़े मुंहवाली बालिका ड्यूनेश्का और उसकी धाय-मां एव्प्रेक्शीयाको देखा। धाय लंबे कदकी एक बूढ़ी औरत थी। उसके मुंह पर झुर्रियां पड़ी हुई थीं और तुर्की मुर्गेकी-सी उसकी ठुड्डी पर एक गांठ थी, जिसे हम घूरकर देखा करते थे।

ड्यूनेश्काका हमारे घर आना पिताजी और टेमीअशोवमें एक जटिल लेन-देनके फलस्वरूप हुआ था।

टेमीअशोव बहुत धनी आदमी था; लेकिन उसके कोई जायज संतान न थी। हां, दो लड़कियां थीं; एक तो ड्यूनेश्का और दूसरी कूबड़ी वेरोश्का जिसकी मां मरफूसा एक दासीकी लड़की थी। टेमीअशोवकी उत्तराधिकारिणी उसकी दो बहिनें थीं। वह उनके लिए अपनी सारी शेष संपत्ति छोड़ रहा था; लेकिन पीरोगोवकी जागीर, जहां वह रहता था, पिताजीको इस शर्त पर देना चाहता था कि पिताजी उस जागीरका मूल्य ३ लाख रूबल उन दोनों लड़कियोंको देदें (पीरोगोव जागीरके संबंधमें यह कहा जाता था कि इसका मूल्य इससे कहीं ज्यादा है, क्योंकि उसमें सोने की खान है)। इसके लिए यह चाल चली गई कि टेमीअशोव पिताजीको एक रसीद देगा,

जिसमें तीन लाख रूबलके लिए पीरोगोव जागीर मेरे पिताको बेची गई दिखाई जायगी। मेरे पिताने अपने हाथसे एक-एक लाख रूबलके तीन प्रनोट लिखकर इस्लेनेव, याजीकोव और ग्लेबोवाको दिये। टेमीअशोवकी मृत्यु होने पर पिताजीको वह जागीर मिलनी थी, जिसके बदलेमें इन्हें तीन लाख रूबल उन दोनों कन्याओंको देने थे। (इस्लेनेव, याजीकोव और ग्लेबोव को पहले ही बतला दिया गया था कि उन्हें उनके नामसे प्रनोट क्यों दिये जा रहे हैं)

शायद मैं सारी योजनाको ठीकसे नहीं बतला सका होऊं, लेकिन इतना मुझे निश्चित रूपसे मालूम है कि मेरे पिताकी मृत्यु के बाद वह जागीर हमें मिली इस्लेनेव, ग्लेबोव और याजीकोवके पास तीन प्रनोट निकले। जब हमारे संरक्षकने उन प्रनोटोंका रुपया दिया तो इस्लेनेव और ग्लेबोवने तो एक-एक लाख रूबल दे दिया, लेकिन याजीकोव सारा रुपया हड़प गया।

दुयूनेश्का हमारे साथ रहती थी। वह सीधी-सादी और शांत लड़की थी; लेकिन वह चतुर लड़की नहीं थी, और बहुत रोनेवाली थी। मुझे याद है कि उसे अक्षर-ज्ञान करानेका काम मुझे सौंपा गया था, क्योंकि मुझे उस वक्त तक फ्रेंच भाषा पढ़ना आ गया था। पहले तो सब ठीक-ठीक चलता रहा (मैं भी पांच सालका था और वह भी) परंतु बादमें में वह संभवत: उकता उठी और जो शब्द मैं उसे बताता, उसका ठीक-ठीक उच्चारण नहीं करती। मैं उसे विवश करता। वह रोने लगती और उसके साथ-साथ मैं भी रोने लगता और जिस समय घरके लोग हमें लेने आते, उस समय हमारी आंखोंमें इतने आंसू भरे होते कि हम एक भी शब्द नहीं बोल पाते थे।

उसके बारेमें दूसरी बात मुझे यह याद है कि जब कभी रकाबीमेंसे एक बेर गायब हो जाता और उसके चुरानेवालाका पता न चलता तो फीडर इवानोविच बड़ी गंभीर मुद्रा बनाकर और हमारी ओर दृष्टिपात न करते हुए कहता कि बेर खानेमें तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन, अगर कोई

उसकी गुठली भी निगल गया तो उसकी मृत्यु हो सकती है। बस, ड्यूनेश्का तुरंत भयभीत होकर बोल उठती कि नहीं, उसने गुठली उगल दी है। एक बार उसके फूट-फूट कर रोनेकी अच्छी तरह याद है। मेरा भाई मिटेंका (डिमिट्री और वह दोनों एक दूसरेके मुंहमें एक पीतलकी जंजीर उगलनेका खेल खेल रहे थे। खेलते-खेलते उसने उस जंजीरको इतने जोरसे उगला और मेरे भाईने अपना मुंह इतना अधिक खोल दिया कि जंजीर उसके गलेसे नीचे उतरकर पेटमें चली गई। उस समय वह नौ-नौ आंसू रोई और उस समयतक रोती रही जबतक डाक्टरने आकर हम सबको शांति नहीं दिलाई।

वह चतुर लड़की नहीं थी, लेकिन बड़ी सीधी-सादी और अच्छी लड़की थी और सबसे बड़ी बात तो यह कि वह अत्यंत पवित्र मनकी थी और हमारे बीच सदा भाई-बहिनका संबंध रहा।

* * *

[अपने नौकरोंके संबंधमें टॉल्स्टॉयने लिखा है।]

प्रास्कोव्या ईसेव्नाका काफी ठीक-ठीक वर्णन मैंने बचपनमें नटाल्या सेविश्नाके नामसे किया है। उसके विषयमें मैंने जो कुछ लिखा है, वह उसके जीवनसे लेकर ही लिखा है। प्रास्कोव्या ईसेव्नाका सब आदर करते थे। वह घरका प्रबंध करती थी और हम बच्चोंका संदूक उसीके छोटे कमरेमें रहता था। उसके संबंधमें मुझे सबसे सुखद स्मृति यह है कि उसके छोटेसे कमरेमें बैठे हुए हम पढ़ाईके बाद अथवा बीचमें ही उससे बात करने लगते थे अथवा उसकी बातें सुना करते थे। शायद वह हमारी उस आनंदमय सुकुमार और विकासशील अवस्थामें, हमें देखकर प्रसन्न होती थी। 'प्रासकोव्या ईसेव्ना, दादा लड़ाईमें किस प्रकार जाते हैं? क्या घोड़े पर?' इस प्रकार उससे बात छेड़नेके लिए कोई उससे पूछ बैठता।

'वह घोड़ेकी पीठपर और पैदल सब तरह लड़ाईमें लड़े; तभी तो वह प्रधान सेनापति बना दिये गए' वह जवाब देती और साथ ही आलमारी-

मेंसे थोड़ी-सी धूप, जिसे वह ओशेकोवकी धूप कहती, निकाल लेती। उसके कहनेसे यही मालूम होता था कि हमारे दादा वह धूप ओशेकोवके घेरेसे लाये थे। वह देवमूर्तिके सामने जलती हुई मोमबत्तीसे एक कागज जलाती और उससे उस धूपको भी जला देती, जिससे बड़ी सुंदर सुगंध निकलती थी।

एक गीले तौलियेसे मुझे पीटकर मेरा अपमान करनेके अलावा (जैसा कि मैंने 'बचपन'में वर्णन किया है) उसने एकबार और मुझे गुस्सा किया था। और कामोंके साथ उसका एक काम यह भी था कि जब आवश्यकता पड़े हमारे एनीमा लगाये। बात उस समयकी है जब मैंने स्त्रियोंके कमरेमें रहना छोड़ दिया था और नीचेकी मंजिलमें थियोडोर ईवानोविचके पास आ गया था। एक दिन सबेरे हम सब बस सोकर उठे ही थे और मेरे बड़े भाइयोंने कपड़े भी पहन लिये थे। मैं जरा पीछे पड़ गया था। मैं अपने सोनेके कपड़े उतार कर पहननेही वाला था कि प्रास्कोव्या ईसेव्ना जल्दी-जल्दी पैर उठाकर चलती हुई अपना सारा सामान लेकर आ गई। इस सामानमें एक रबड़की नली थी जो किसी कारण कपड़ेमें लिपटी हुई थी; और उसकी केवल हड्डीकी पीली टोंटी ही दिखाई पड़ती थी, और जैतूनके तेलसे भरी हुई एक रकाबी थी। इस रकाबीमें नलीका मुंह डूबा हुआ था। मुझे देखकर वह यह समझी कि मैं भी उन बच्चोंमें हूं, जिन्हें बुआने एनीमा देनेको कहा है। वास्तवमें वह मेरे भाईको लगाना था, लेकिन मेरा भाई संयोगसे अथवा छलसे अचानक यह बात पहलेसे ही भांप गया। वस्तुत: हम सभी बच्चे प्रास्कोव्यासे एनीमा लगवानेसे बहुत घबराते थे। अत: मेरा भाई शीघ्र ही कपड़े पहनकर सोनेके कमरेके बाहर चला गया था; और मेरे शपथपूर्वक यह कहने पर भी कि मुझे एनीमा नहीं लगाना हैं, प्रास्कोव्या न मानी और एनीमा लगा ही दिया।

उसकी ईमानदारी और वफादारीके कारण तो मैं उससे प्रेम करता ही था, लेकिन इसलिए और करता था कि वह और बूढ़ी अन्ना इवेनोव्ना ओशाकोवके घेरेसे संबंधित मेरे दादाके रहस्यमय जीवनकी प्रतिनिधि थीं।

अन्ना इवेनोव्ना हमारी नौकर नहीं रही थी, लेकिन मैंने उसे एक-दो बार अपने घर पर देखा था। लोग कहते थे कि उसकी आयु १०० वर्ष-की है और उसे पूगाशेव याद है। उसकी आंखें बहुत काली थीं और एक ही दांत बच रहा था। उसका बुढ़ापा हम बच्चों को बहुत ही भयानक मालूम पड़ता था।

छोटी धाय टाशियाना फिलिप्पोव्ना सांवले रंगकी छोटे, परंतु मोटे-मोटे हाथवाली ठिगने कदकी जवान स्त्री थी! वह बूढ़ी धाय ऐनुश्काकी मदद किया करती थी। ऐनुश्काके विषयमें तो मुझे कुछ भी याद नहीं; क्योंकि उस समय मैं बहुत छोटा था। मुझे अपने होने या न होनेका भान उस समय होता था जब कि मैं उसके पास होता था; चूंकि उस समय मैं अपने को देख और समझ नहीं सकता था, इसलिए मैं उसे भी देख और समझ नहीं सकता था; अतः उसके बारेमें मुझे कुछ भी याद नहीं। मैं उस समय इतना छोटा था कि मुझे अपना ही कुछ ज्ञान नहीं था, फिर धाय का कैसे होता?

लेकिन मुझे ड्यूनेश्काकी धाय एवप्रेक्शिया और उसकी गर्दनकी गांठ खूब याद है। हम लोग बारी-बारीसे उसकी गर्दनकी गांठ छूते थे। हमें यह बात बिलकुल नई लगती थी कि हमारी धाय ऐनुश्का सबकी धाय नहीं है और ड्यूनेश्का अपने लिए पीरोगोवसे खास तौरपर धाय लाई है।

धाय टाशियाना फिलिप्पोव्नाकी तो मुझे खूब याद है, क्योंकि आगे चलकर वह मेरी भतीजियोंकी और फिर मेरे सबसे बड़े लड़के की धाय ही वह उन स्नेहशील प्राणियोंमें थी, जो अपने पोष्य-पुत्रोंसे इतना प्रेम करने लगती हैं कि फिर उनके सारे हित उन्हींमें केंद्रित हो जाते हैं। अपने संबंधियोंसे फिर उनका इतना ही नाता रह जाता है कि या तो वे उन्हें फुसलाकर कुछ रुपया ऐंठ लें या उनकी मृत्युके बाद उनके संपत्तिके अधिकारी हो जायें।

ऐसी स्त्रियोंके भाई, पति और लड़के बड़े उड़ाऊ होते हैं। जहांतक

मुझे याद है। टाशियाना फिलिप्पोव्नाका पति और पुत्र, दोनों ऐसे ही थे। इसी मकानमें उसी जगह, जहांपर बैठा-बैठा मैं यह संस्मरण लिख रहा हूँ, मैंने उसको बड़े कष्टसे, लेकिन साथ ही शांतिसे मरते देखा है।

उसका भाई निकोलस फिलिप्पोविच हमारा कोचवान था। जागीरदारोंके अधिकांश लकड़कोंके समान हमभी उसे केवल प्यार ही नहीं करते थे, बल्कि बड़े मान और आदरकी दृष्टिसे देखते थे। वह विशेष मोटे जूते पहिनता था। उसके पास खड़े होने पर अस्तबलकी बू आती थी। उसकी आवाज मधुर और गंभीर थी।

खानसामा वेसिली ट्रूवेटसकायका उल्लेख करना भी जरूरी है। यह मिलनसार और दयालु व्यक्ति था। उसे बच्चोंसे विशेषकर सर्जीसे बहुत प्रेम था। बादमें सर्जीके यहां वह नौकर हुआ और वहीं उसका देहांत भी हुआ वह हमें एक बड़े थालमें बिठाकर ऊपर रसोईघरमें ले जाता और फिर नीचे ले आता। इसमें हमें बड़ा आनंद आता और हम उससे रहते— "हमें भी ! अब हमारी बारी है।" मुझे उसकी प्रेमभरी तिरछी मुसकान याद है। जब वह हमें गोदमें ले लेता था तो उसका झुर्रियां पड़ा हुआ चेहरा और उसकी गर्दन साफ दिखाई पड़ती थी। मुझे उस वक्तकी याद है जब वह स्कारबाचेव्काको विदा हो रहा था। यह जागीर कुर्स्क प्रांतमें थी और पेट्रोव्स्कीसे मेरे पिताको विरासतमें मिली थी। वेसिल ट्रुवेट्स्कायकी बिदाई बड़े दिनकी छुट्टियोंमें हुई थी, जबकि हम बच्चे कुछ दासोंके साथ बड़े कमरेमें 'छोटे रूबल, जाओ' खेल खेल रहे थे।

बड़े दिनके त्यौहारकी कुछ बातें भी कह देनी चाहिए। इन दिनों हमारे घरके सब दास, जिनकी संख्या लगभग ३०के थी, बहुरूपियोंके समान भिन्न-भिन्न प्रकारके कपड़े पहनकर बड़े कमरेमें इकट्ठे होते और बहुतसे खेल खेला करते थे। ग्रेगोरी, जो सिर्फ ऐसे ही मौकोंपर हमारे यहां आया करता था, बाजा बजाता और सब लोग नाचते थे। इससे हमारा बड़ा मनोविनोद होता था कपड़े वे ही पिछले सालोंके होते थे। कोई भेड़िया बनता, कोई मदारी। कोई बकरीका रूप धारण करता। कुछ तुर्की

आदमी औरतोंका बाना पहिनते, कुछ डाकू और किसान स्त्री-पुरुषों के भेष धरते थे। मुझे याद है कि इन विचित्र पोशाकोंमें कुछ लोग बहुत सुंदर लगते थे। विशेषकर तुर्की लड़की माशा तो बहुत ही अच्छी लगती थी। कभी-कभी बुआ हमें भी ऐसे ही कपड़े पहना देती थीं। जवाहरात लगी हुई पेटी और सोने-चांदीके कामका एक जाल पहननेके लिए सभी उत्सुक रहते थे। मैं भी अपने होठोंपर कोयलासे काली-काली मूंछे बनाकर अपनेको बड़ा स्वरूपवान समझने लगता था। मैं शीशेमें अपना मुंह काली-काली मूंछें और भौंहें देखता; और यद्यपि मुझे चाहिए था कि मैं एक तुर्ककी भांति गंभीर मुद्रा बना लूं, लेकिन मैं खुशीसे अपनी मुस्कराहट नहीं रोक पाता था। बहुरूपिये सभी कमरोंमें जाते, और वहां उन्हें सुस्वादु भोजन खानेको मिलता था।

एक बार जब मैं बहुत छोटा था, बड़े दिनकी छुट्टियोंमें इस्लेनेव-परिवारके सब लोग—इस्लेनेव (मेरी पत्नी के दादा), उनके तीन लड़के और तीनों लड़कियां स्वांग भरकर हमारे यहां आये। उन्होंने आश्चर्यजनक भेष बना रखे थे। उनमें एक श्रृंगारदान बना हुआ था; दूसरा जूता तीसरा विदूषक और चौथा कुछ और बना हुआ था। वे तीस मील चलकर गांवमें आये और वहां उन्होंने अपना-अपना स्वांग बनाया और फिर हमारे बड़े कमरेमें आये। इस्लेनेव पियानो बजाने बैठ गये, और अपने बनाये हुए गाने बड़े लयसे गाने लगे, जो मुझे अबभी याद हैं। उनकी कुछ पक्तियां इस प्रकार थीं।

नये वर्षमें नाच रंग कर,
हम अभिवादन करने आये।
सुख पायेंगे, यदि तुम सबका,
हम कुछ भी मन बहला पाये।

ये सब बातें बड़ी आश्चर्यकारी थीं और शायद बड़े लोग इनसे बहुत प्रसन्न भी होते थे; लेकिन हम बच्चोंका तो घरके दासोंके स्वांगमें ही आनंद आता था।

ये सब उत्सव बड़े दिनसे आरंभ होकर नये सालमें जाकर समाप्त होते थे लेकिन कभी-कभी वे १२ वें दिनकी राततक चलते थे। पर नये सालके बाद थोड़े आदमी आते थे और उत्सव फीके पड़ जाते थे। इसी दिन वेसिली स्कारवाचेव्काके लिए रवाना हुआ। मुझे याद है कि हम लोग अपने बड़े कमरेके धुंधले प्रकाशमें चमड़ेकी गद्दियोंदार कुर्सियों पर एक कोनेमें घेरा-सा बनाकर बैठे हुए 'छोटे रूबल, जाओ, खेल खेल रहे थे। हम लोग एक-दूसरेको रूबल देते जाते थे और गाते जाते थे—'छोटे रूबल जाओ—छोटे रूबल जाओ।' फिर हममेंसे एक लड़का उस रूबलको ढूंढ़ने जाता। मुझे याद है कि एक दास-पुत्री इन पंक्तियोंको बड़ेही सुंदर और मधुर स्वरसे गा रही थी। इसी समय एकाएक दरवाजा खुला और वेसिली आया। वह अपने सब कपड़े-लत्ते पहने हुए था। उसके हाथमें थाल-वाल भी नहीं था। वह कमरेमेंसे होता हुआ पढ़नेके कमरेमें चला गया। उसी समय मालूम हुआ कि वह कारिंदा बनकर स्कारवाचेव्का जा रहा है। मुझे इस बातसे खुशी हुई कि उसकी तरक्की हो गई है। लेकिन साथ ही मुझे दुःख भी हुआकि वह अब यहां नहीं आवेगा और हमें बिठा बिठाकर ऊपर रसोई-घरमें नहीं ले जायगा। वास्तवमें उस समय न तो मैं यह समझ सका, न यह विश्वास ही कर सका कि इतना बड़ा परिवर्तन संभव हो सकता है। मैं बहुत अधिक उदास हो गया और 'छोटे रूबल जाओ' पद हृदयको सालने लगा और जब वेसिली हमारी बुआओंको प्रणामकर लौटा और अपनी मृदुल मुस्कराहटके साथ हमारे पास आकर हमारे कंधोंको चुम्मा लेने लगा, उस समय जीवनमें पहली बार मुझे इस जीवनकी अस्थिरता पर भय लगा और प्रिय वेसिलीके प्रति करुणा और प्रेम उमड़ पड़ा।

लेकिन बादमें जबमैं दुबारा वेसिलीसे अपने भाईके कारिंदेके रूपमें मिला, तब पहलेकी भ्रातृ-भावकी वह पवित्र और मानवी भावना मुझमें नहीं रही थी।

[टॉल्सटॉयके तीन बड़े भाई थे। उनमें बड़े निकोलस थे, जिनको

घरमें निकोलेंका कहकर पुकारते थे और टॉल्स्टॉय सबसे अधिक प्रेम और संमान करते थे। इनका टॉल्स्टॉयके जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। उनके विषयमें टॉल्स्टॉय लिखते हैं।]

वह बाल्यकालमें बड़े तेज और प्रतिभाशाली थे और बड़े होनेपर उनकी प्रतिभा और भी विकसित हुई। तुर्गनेव उनके विषयमें ठीक ही कहते थे कि उनमें ऐसी कोई कमी नहीं हैं जो एक अच्छा लेखक बननेके लिए जरूरी है। उनमें एक अच्छे लेखकके कई गुण थे। उनमें कलाकी भावना बड़ी तेज थी। क्या बात किस प्रकार किस स्थान पर लिखी जानी चाहिए, यह भी वह अच्छी तरह जानते थे। उनका व्यंग भी बहुत प्रसन्न करनेवाला और अच्छा होता था। उनकी कल्पना तेज और अनंत थी। वह जीवनका उच्च आदर्श रखते थे। इन सबके अतिरिक्त एक विशेष गुण यह था कि उन्हें अहंकार छू भी नहीं गया था। उनकी कल्पना इतनी तेज थी कि वह घंटों परियों या भूतोंकी कहानियां अथवा श्रीमती रेडक्लिफके ढंगकी अन्य मनोरंजक कहानियां बिना रुके हुए सुना सकते थे और उन कहानियोंमें इतनी सजीवता और स्वाधीनता होती थी कि उनको सुनते समय आदमी यह भूल जाता था कि वे सच्ची नहीं हैं बल्कि काल्पनिक हैं। जिस समय वह कहानी सुना या पढ़ रहे न होते (वह पढ़ते बहुत थे) उस समय चित्र बनाया करते थे। सींग और चढ़ी मूंछों सहित शैतानके चित्र बहुत तरहके और बहुतसे काम करते हुए बनाते थे। ये चित्र भी एकदम काल्पनिक होते थे।

जिस समय मेरे भाई डिमिट्री ६ सालके और सर्जी ७ वर्षके थे, उस समय निकोलसने ही सबसे यह कहा था कि उन्हें एक ऐसा मंत्र मालूम है, जिसे यदि बता दिया जाये तो संसारमें कोई भी दुःखी न रहे, कोई बीमारी न हो, किसीको कोई कष्ट न हो, कोई आदमी किसीसे नाराज न हो, सब एक-दूसरेसे प्रेम करें और परस्पर धर्म-भाई बन जायें। यही नहीं, हमने तो धर्म-भाईका एक खेल खेलना भी आरंभ किया, जिसमें हम सब कुर्सियोंके नीचे बैठ जाते और दुशालोंका पर्दा डालकर अपनेको छुपा

लेते, एक दूसरेसे सटकर और लिपटकर बैठ जाते अथवा अंधेरेमें एक दूसरेके पैरोंपर पड़ जाते।

हमें यह धर्म-भ्रातृत्व तो बतला दिया गया, किंतु असली मंत्र नहीं बतलाया गया जिससे कि हर एक मनुष्यकी पीड़ाएं और दुःख मिट जाते और वे एक दूसरेसे लड़ना-झगड़ना और गुस्सा होना बंद कर देते और अनंत आनंद अनुभव करते। उन्होंने कहा कि मैंने वह मंत्र एक हरी लड़की पर लिखकर उसे एक खड्डके किनारे एक सड़कके पास गाड़ दिया है। और चूंकि मृत्युके बाद मुझे तो कहीं-न-कहीं दफनाया ही जाता, अतः मैंने वह इच्छा प्रकट की कि मेरी मृत्युके बाद मुझे निकोलेंककी स्मृतिमें उसी स्थान पर, जहां कि वह लकड़ी गाड़ी गई थी, दफनाया जाय। उस लकड़ीके अतिरिक्त वह हमें फेनकेरोनीव पहाड़ीपर भी ले जानेके लिए कहते थे; परंतु इस शर्तपर कि हम एक कोनेपर खड़े हों और सफेद रीछ-का विचार भी मनमें न आने दें। मुझे याद है कि मैं अधिकतर एक कोनेमें खड़ा रहता और इस बातका प्रयत्न करता कि मुझे सफेद रीछका ध्यान न आये। परंतु उसका ध्यान आये बिना न रहता। दूसरी शर्त यह थी कि फर्शपर रखे तख्तोंकी दरार पर बिना थर्राये या बिना कांपे चलना पड़ेगा। तीसरी शर्त यह थी कि एक साल तक जीवित या मृत या पका हुआ खरगोश न देखो। इसके साथ-साथ यह भी शपथ लेनी पड़ती थी कि हम यह भेद किसीको न बतलायेंगे। जो कोई भी आदमी निकोलसकी इन शर्तोंको तथा इनके अतिरिक्त उन शर्तोंको, जो बादमें वह बतावें, पालन करे, तो उसकी एक इच्छा, चाहे वह कुछ भी हो, अवश्य पूर्ण हो जायगी।

[अपने अन्य भाइयोंके विषयमें टॉल्स्टॉय लिखते हैं।]

डिमिट्री मेरे साथी थे। निकोलसका तो मैं संमान करता था, परंतु सर्जको देखकर मेरा रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठता था। मैं उनका अनु-सरण करता, उनसे प्रेम करता और यही कामना किया करता था कि मैं बिलकुल उन-जैसा हो जाऊं। उनकी सुंदरता, मधुर स्वर (वह सदा गाते

रहते थे), उनकी चित्रकला, उनकी चपलता, प्रफुल्लता और विशेषकर उनके स्वाभाविक आत्माभिमानको देखकर मैं आनंदसे फूल उठता था मुझे अपना बड़ा खयाल रहता था और मैं सदा इस बातका, चाहे इसमें मेरी गलती हो या न हो, ध्यान रखता था कि दूसरे लोग मेरे विषयमें क्या खयाल रखते हैं। इसी कारण मेरे जीवनका आनंद मिट जाता था और संभवत: इसीलिए मैं दूसरे आदमियोंमें इससे विपरीत गुण अर्थात् स्वाभाविक आत्मश्लाघा देखना पसंद करता था। इसीलिए मैं सर्जोसे प्रेम करता था। लेकिन उस भावनाको बतलानेके लिए 'प्रेम' बिलकुल ठीक शब्द नहीं है। मैं निकोलससे प्रेम करता था लेकिन सर्जोको देखकर तो मैं अपनेको भूल-सा जाता था, मानो मैं अपनेसे कोई भिन्न और अबूझ वस्तु पाकर मंत्र-मुग्ध हो गया हूं। उनका जीवन वास्तवमें मनुष्यका जीवन था—वह बहुत सुंदर परंतु मेरे लिये अगम्य, रहस्यपूर्ण और इसी कारण बहुत आकर्षक था।

अभी थोड़े दिन हुए[1] उनकी मृत्यु हो गई। अपनी आखिरी बीमारीमें और अपनी मृत्यु-शैय्या पर भी वह मेरे लिए उतने ही गहन, अगाध और प्रिय थे जैसे कि बचपनके दिनोंमें। बादमें बुढ़ापेमें वह मुझे ज्यादा प्यार करने लगे थे, अपने प्रति मेरे प्रेमका आदर करते थे, मुझपर अभिमान करते थे और विवादास्पद विषयोंमें मेरे मतसे सहमत होनेका प्रयत्न करते, लेकिन हो नहीं सकते थे। वह जैसे थे अंततक वैसे ही रहे। वह अद्वितीय, विलक्षण, सुंदर, कुलीन, आत्माभिमानी और इन सबसे अधिक इतने सच्चे और शुद्ध-हृदय व्यक्ति थे कि मैंने आज तक वैसा दूसरा व्यक्ति नहीं देखा। वह जैसे अंदरसे थे वैसेही बाहरसे थे। वह कोई बात छिपाते नहीं थे और जो थे उससे बढ़कर किसीके सामने अपनेको प्रकट न करते थे।

निकोलसके साथ तो मैं रहना, बातें करना और विचार-विनिमय करना पसंद करता था। सर्जोका मैं पदानुसरण करना चाहता था। उनका

[1] अगस्त १९०४ में।—सं०

अनुसरण करना मैंने बहुत बचपनसे आरंभ कर दिया था। वह मुर्गियां पालते थे, अतः मैंने भी मुर्गियां रखनी आरंभ करदीं। पशु-पक्षियोंके जीवनका अध्ययन करनेका वह मेरा पहला ही अवसर था। मुझे मुर्गियों-की बहुत-सी जातियां, भूरी, चितकबरी और कलंगीवाली, अब भी याद हैं। मुझे याद है कि किस प्रकार हमारे बुलाने पर वह दौड़ कर आतीं किस प्रकार हम उन्हें दाना डालते और हम उस डच मुर्गेसे जो उनके साथ दुर्व्यवहार करता था, कितनी घृणा करते थे। सर्जीने ही पहले-पहल मुर्गियोंके बच्चे मंगाये और उन्हें पालना शुरू किया। मैंने तो केवल उनकी नकल करनेकेलिए पाला था। सर्जी एक कागजपर मुर्गे-मुर्गियोंके चित्र बनाते और उनमें बड़े सुंदर रंग भरते। वे मुझे बड़े आश्चर्य-जनक लगते थे। मैं भी यही करता था; लेकिन मेरे चित्र बड़े भद्दे होते थे। (फिर भी मैं इस कलामें लंबी-चौड़ी बातें बनाकर ही अभ्यस्त होनेकी आशा करता था) जब सर्दियोंके दिन खिड़कियोंमें दोहरे किवाड़ लगा दिये गये, तब सर्जी ने मुर्गियोंको खाना देनेका एक नया उपाय खोज निकाला। वह किवाड़ोंकी चावियों के छेदमेंसे सफेद और काली रोटी-के लंबे-लंबे टुकड़े बनाकर उन्हें दिया करते। मैं भी यही करता था।

मेरे बाल-मस्तिष्क पर एक मामूली-सी घटनाने बड़ा प्रभाव डाला। मुझे वह घटना इतनी अच्छी तरह याद है, मानों वह अभी घटी हो। टेमीअशोव हम बच्चोंके कमरेमें बैठा हुआ फीडर ईवानोविचके साथ बात-चीत कर रहा था। न जाने कैसे उपवासकी बात चल पड़ी और अच्छे-स्वभाव वाले टेमीअशोवने सीधे-सादे भावसे कहा—"मेरे पास एक रसोइया था; जो व्रतके दिन भी मांस खाता था। मैंने उसे फौजमें भेज दिया।" मुझे यह घटना अब इसलिए याद है कि उस समय मुझे यह बात एकदम अजीब-सी मालूम पड़ी और मेरी समझमें जरा भी नहीं आई।

एक घटना और है और वह पेरोवस्कोकी जागीरके[1] उत्तराधिकारके

[1] इस जागीरमें कुर्स्क प्रांतके स्कारबाचेव्का और नेरुच नामक दो जागीरें थीं।

संबंधमें थी। पेरोवस्कोकी जागीरका एक भूतपूर्व दास इल्या मेट्रोफेनिच था। वह एक लंबा तथा बूढ़ा आदमी था। उसके बाल सफेद हो गये थे। वह पक्का शराबी और अपने समयके सारे हथकंडोंमें उस्ताद था। उसकी सहायतासे इस जागीरके उत्तराधिकारके संबंधमें जो मुकदमा चला था वह जीत लिया गया और नेरुचसे भरी हुई गाड़ियों एवं घोड़ोंके झुंड-के-झुंड आये, जिनकी मुझे अब भी याद है। इल्याने इस जागीरको दिलानेमें बहुत काम किया थां, अतः उसके उपलक्षमें मृत्यु-पर्यंत यास्नाया पोल्यानामें रहनेका उसका प्रबंध कर दिया गया।

मेरे बहनोई बेलेरियनके चाचा प्रसिद्ध 'अमरीकन' थियोडोर टॉल्स्टॉय हमारे यहां आये थे, इसको मुझे अच्छी तरह याद है। वे एक घोड़ा-गाड़ीमें बैठकर आये थे, वे सीधे पिताजीके पढ़नेके कमरेमें पहुँचे और बोले, मेरे लिए खास तरह की सूखी फ्रांसीसी रोटी मंगाइये। वह उसे छोड़कर दूसरी रोटी खाते ही न थे। मेरे भाई सर्जीके दांतोंमें बड़ा जोरका दर्द हो रहा था। थियोडोरने पूछा कि सर्जीको क्या हुआ? और जब उन्हें मालूम हुआ कि उसके दांतोंमें दर्द हो रहा है, तब उन्होंने कहा, अच्छा, मैं अभी जादूसे इसे बंद किये देता हूँ। वह पिताजीके पढ़नेके कमरेमें गये और भीतरसे दरवाजा बंद कर लिया। थोड़ी देर बाद वह मलमलके दो रूमाल, जिनके किनारे पर कुछ फूल-पत्तियां कढ़ी हुई थीं, हाथमें लेकर आये। उन्होंने दोनो रूमाल हमारी बुआको देते हुए कहा—'यह रूमाल बांधते ही दर्द मिट जायगा। और यह रूमाल लगते ही उसे नींद आ जायगी।' बुआने वे रूमाल ले।लिये और उन्हें उसी प्रकार रख दिया। हमारे मनमें यही खयाल बना रहा कि उन्होंने जैसा कहा था वैसा ही हुआ।

उनका हजामत बना हुआ कठोर, रूखा और दमकता हुआ सुंदर मुख मुंहके कोनोंतक कटी हुई कलम और घुंघराले बाल मुझे बहुत अच्छे लगते थे। इस असाधारण, **अपराधी** और आकर्षक व्यक्तिके संबंधमें बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिन्हें मैं कहना पसंद न करूंगा।

राजकुमार वोल्कोंस्कीके भी अपने यहां आनेकी मुझे याद है। वह माताजीके कोई मौसेरे या फुफेरे भाई थे। वह मेरा दुलार करना चाहते थे। उन्होंने मुझे अपने घुटने पर बिठा लिया, और जैसा कि बहुधा होता है, मुझे गोदीमें बिठाये-बिठाये घरके बड़े आदमियोंसे बातें करनेमें मग्न रहे। मैं उनकी गोदीसे उठनेका प्रयत्न करता तो वह मुझे और कसकर थाम लेते। कुछ मिनटों तक यही चलता रहा। लेकिन इस तरह कैद हो जाने, आजादी छिन जाने और ऊपरसे बल-प्रयोगसे मैं इतना उकता उठा और मुझे इतना क्रोध आया कि मैं एकाएक जोरोंसे उनके चंगुलसे छूटनेकी कोशिश करने, चिल्लाने और उन्हें मारने भी लगा।

यास्नाया पोल्यानासे दो मील दूर एक गांव ग्रुमंड है (उसका यह नाम मेरे दादाने रखा था, वह अर्केंजलके जहां पर ग्रुमंड नामका एक टापू था, गवर्नर रह चुके थे।) [ग्रुमंडके संबंधमें टॉल्स्टॉय लिखते हैं कि वहां पर पशुओंके लिए एक सुंदर बाड़ा और जब-तब रहनेके लिए एक बहुत सुंदर छोटा-सा मकान बना हुआ था टॉटल्स्टॉय परिवारके बच्चों को यहां दिन बिताना बहुत अच्छा लगता था; क्योंकि यहांपर पानीका एक बड़ा सुंदर सोता और मछलियोंसे भरी हुई एक छोटी-सी तलैया थी। वह आगे लिखते हैं:]

"लेकिन एक बार एक घटनासे, जिसके कारण हम सभी—कम-से-कम मैं और डिमिट्री—करुणार्द्र हो रो पड़े और हमारा सारा आनंद जाता रहा। बात यह हुई कि हम सब अपनी गाड़ीमें बैठे घर लौट रहे थे। फीडर इवानोविचकी भूरे रंग, सुंदर आंखों और नरम घुंघराले बाल वाली शिकारी कुतिया बर्था, हमारी गाड़ीके आगे-पीछे भाग रही थी। जैसेही हम ग्रुमंड बागसे आगे बढ़े, एक किसानके कुत्तेने उस पर हमला किया। बर्था गाड़ीकी ओर भागी। फीडर ईवानोविच गाड़ी न रोक सके और वह उसके एक पंजे परसे निकल गई। जब हम घर आये और बर्था भी हमारे पीछे-पीछे तीन पैरोंसे लंगड़ाती-लंगड़ाती आई तो फीडर इवानोविच और हमारे खिदमतगार निकिटा डिमिटीने जो एक शिकारी

भी था) उसका पैर देखकर कहा कि उसका पैर टूट गया है और अब यह आगे कभी शिकारके काम नहीं आ सकती। मैं ऊपर अपने छोटे कमरे में इनकी बातें सुन रहा था। जिस समय फीडर इवानोविचने यह कहा कि 'अब यह किसी कामकी नहीं रही; इसका तो एकमात्र उपाय यही है कि इसे मार दिया जाय' तो मैं अपने कानों पर विश्वास नहीं कर सका।

बेचारी कुतिया कष्टमें थी, बीमार थी और इसके लिए उसे मौतके घाट उतारा जा रहा था। मेरे मनमें यह भावना उठी कि नहीं, यह बात गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए। परंतु फीडर इवानोविचने जिस ढंगसे यह बात कही और निकिटा डिमिट्रीने जिस ढंगसे उसका समर्थन किया उससे मालूम होता था कि वे अपना निर्णय पूरा करने पर तुले हुए हैं और जैसे कि कुजमा[1] के कोड़े लगानेके लिए ले जाते समय तथा

[1] इस घटना के विषय में टॉल्स्टॉय लिखते हैं:—

हम सब बच्चे घूमकर अपने शिक्षक फीडर इवानोविचके साथ वापस लौट रहे थे। उसी समय खलिहानके पास हमें हमारा मोटा कोचवान ऐंड्रू मिला। उसके साथ हमारा सहायक कोचवान कुजमा भी था, जिसकी आंखें भेड़-सी थीं और इसी कारण वह भेड़ा कुजमा कहलाता था। कुजमा बहुत उदास था। उसका विवाह हो चुका था और उसकी जवानी भी ढल चुकी थी। हममेंसे एकने ऐंड्रू से पूछा कि वह कहां जारहा है। उसने शांति-से उत्तर दिया कि वह कुजमाको खलिहान पर कोड़े लगानेकेलिए ले जारहा है मुंह लटकाए हुए कुजमाकी मूर्ति और इन शब्दोंने मेरे मनमें जो भय पैदा कर दिया उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। शामको मैंने यह बात अपनी बुआ टाशियाना ऐलेक्जेंड्रोव्नासे कही। उन्हें शारीरिक दंड देनेसे बड़ी घृणा थी और जहां कहीं उनका बस चलता, वह कभी दासोंको या हमको शारीरिक दंड न देती थीं। मेरे कहने पर उनको बहुत बुरा लगा और उन्होंने कहा, "तूने उसे रोका क्यों नहीं?" उसके इन शब्दोंसे मुझे और भी दुःख हुआ।...मैंने कभी यह सोचा ही नहीं था कि हम ऐसे

टेमीअशोवने जब बतलाया था कि किस प्रकार उसने अपने रसोइयाको व्रतके दिन मांस खाने पर फौज में भेज दिया था, उस समय मैंने अनुभव किया था कि यह गलत था, परंतु अपनेसे बड़े लोगोंके प्रति आदरकी भावनाके कारण मुझे उनके हर निश्चयके सामने अपनी भावना पर विश्वास करनेकी हिम्मत नहीं पड़ी, वैसे ही इस बार भी नहीं पड़ी।

मैं अपने बाल्य-कालकी सभी सुखद स्मृतियोंका वर्णन नहीं करूंगा; क्योंकि उनका अंत नहीं है और दूसरे वे मुझे प्रिय और महत्त्वपूर्ण लगती हैं, पर मैं उन्हें अन्य लोगोंके सामने महत्त्वपूर्ण नहीं सिद्ध कर सकता।

मैं अपने बाल्य-जीवनके एक आध्यात्मिक अनुभवके विषयमें कुछ कहूंगा। यह अनुभव मेरे बचपनमें मुझे अनेक बार हुआ और मैं समझता हूं कि वह बादके बहुतसे अनुभवोंसे कहीं बढ़कर है। वह इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि वह प्रेमका पहला अनुभव था, किसी व्यक्तिके प्रति-प्रेम नहीं, बल्कि प्रेमके प्रति प्रेम, ईश्वरके प्रति प्रेम-इस प्रेमका अनुभव बादके जीवनमें यदा-कदा ही होता था, लेकिन होता अवश्य था, और शायद इस कारण होता था (इसके लिए ईश्वरका धन्यवाद है) कि उसका बीज बचपनमें ही बो गया था। इसका अनुभव इस प्रकार होता था। हम, विशेषकर मैं, डिमिट्री और लड़कियां कुर्सियोंके नीचे यथा-संभव एक-दूसरेसे सटकर बैठ जाते। इन कुर्सियोंके चारों ओर शाल लपेट दिया जाता और ऊपर गद्दियां ढक दी जाती। हम एक-दूसरेसे कहते कि हम सब भाई-भाई हैं, और उस समय एक-दूसरेके प्रति एक विचित्र प्रेम-भावका अनुभव करते। कभी यह प्रेम-भावना बढ़ कर लाड़-दुलार तक पहुंच जाती और हम एक-दूसरेको थपथपाने लगते या आलिंगन करते, पर ऐसा बहुत कम होता था और हम सब अनुभव करते थे कि ऐसा उचित नहीं है और अपनेको रोक लेते थे।

मामलोंमें पड़ सकते हैं। पर वास्तवमें हम ऐसे मामलोंमें बोल सकते थे। परंतु अबतो बात हाथसे निकल चुकी थी और वह भयानक कांड किया जा चुका था।

कभी-कभी हम उन कुर्सियोंके नीचे बैठे-बैठे ही बातचीत किया करते थे कि हम किस-किससे कितना प्रेम करते हैं, सुखी और प्रसन्न जीवन बितानेके लिए किन-किन बातोंकी आवश्यकता है; हमें किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करना और किस प्रकार सबके प्रति प्रेम-भाव रखना चाहिए।

मुझे याद है कि इसका आरंभ एक यात्राके खेलसे होता था। हम लोग कुर्सियों पर बैठ जाते और अन्य कुर्सियोंको खींचकर एक गाड़ी बनाते। हम सब लोग बैठकर यात्रीका खेल खेलते और फिर धर्म-भाईका खेल खेलने लगते। इसमें हमारे साथ और लोग भी शामिल हो जाते! यह खेल बहुत ही अच्छा था और ईश्वरको धन्यवाद है कि हम यह खेल खेलते थे। हम इसे खेल कहते थे, लेकिन वास्तवमें इसे छोड़कर संसार-की प्रत्येक बात एक खेल ही है।

[जर्मन भाषामें टाल्स्टायकी जीवनीके लेखक लौवेनफेल्डके यह पूछने पर कि यह कैसे हुआ कि आपको ज्ञानार्जनकी इतनी पिपासा थी, फिर भी आपने उपाधि लेनेसे पहले ही विश्वविद्यालय छोड़ दिया, टाल्स्टाय ने लिखा है :]

'हां, मेरी ज्ञानपिपासा ही मेरे यूनिवर्सिटी छोड़नेका कारण थी। कजानमें हमारे शिक्षक जिन विषयोंपर जो-जो व्याख्यान देते थे, वे मुझे जरा भी रोचक नहीं लगते थे। पहले तो मैंने एक सालतक पूर्वी भाषाओंका अध्ययन किया, परंतु उसमें मैंने बहुत थोड़ी प्रगति की। मैं हर एक चीजमें जी-जानसे लग पड़ता था और एक ही विषय पर एक साथ बहुतेरी पुस्तकें पढ़ डालता था। लेकिन एक साथ मैं एक ही विषयकी पुस्तकें पढ़ता था। जब मैं एक विषयको उठाता तो फिर उसको बीचमें छोड़ता न था और उसपर वे सब पुस्तकें पढ़ता था जो उस विषय पर प्रकाश डालती थीं। कजानमें मेरा यही हाल था।'

[एक दूसरे अवसर पर टाल्स्टायने कहा :]

विश्वविद्यालय छोड़नेके विशेषकर दो कारण थे। पहला तो यह कि मेरे भाई सर्जी अपनी पढ़ाई समाप्त कर चुके थे और उन्होंने विद्यालय छोड़

दिया था। दूसरे केथोराइनकी 'नकाज' और 'गेस्प्रिट द लुईस' पर मैंने जो लिखा, उसने मेरे लिए मानसिक कार्यका एक नवीन क्षेत्र खोल दिया। विद्यालयके कामके कारण मुझे इसमें सहायता मिलनी तो दूर, मेरे काममें बाधा भी पड़ती थी।

मेरे भाई डिमिट्री मुझसे एक साल बड़े थे। उनकी आंखें बड़ी-बड़ी थीं और उनसे गंभीरता टपकती थी। मुझे यह तो याद नहीं कि बचपनमें वह कैसे थे, लेकिन बादमें मैंने लोगोंके मुंहसे सुना कि बचपनमें बड़े सनकी और अस्थिर थे। यदि उनकी धाय उनकी सार-संभाल ठीक न करती तो वह इस पर उससे क्रोधित होते और चिल्लाते। मैंने यह भी सुना है कि माताजी उनसे बहुत परेशान थीं। वह आयुमें लगभग मेरे बराबर ही थे और हम दोनों साथ-साथ बहुत खेले। यद्यपि मैं उनसे इतना प्रेम नहीं करता था जितना सर्जोसे, न इतना आदर ही जितना कि मैं निकोलसका करता था, लेकिन फिर भी हम दोनोंमें मित्रभाव था, और मुझे याद नहीं कि हम दोनों कभी लड़े हों। हो सकता है कि हम कभी लड़े भी हों; लेकिन उस लड़ाईकी छाप हमारे दिलमें बिलकुल न रही। मैं उनसे सरल और स्वाभाविक तौरपर प्रेम करता था, जिसका (प्रेमका) न तो मुझे ज्ञान था, और न जिसकी अब स्मृति ही शेष है। मैं यह समझता हूं, और विशेषकर बचपनका यह मेरा अपना अनुभव भी है कि बाल्यकालमें दूसरोंके प्रति प्रेम आत्माकी एक स्वाभाविक स्थिति है, या दूसरे शब्दोंमें एक-दूसरेके बीच एक स्वाभाविक संबंध है, और जिस समय मनुष्यकी ऐसी स्थिति होती है उस समय उसे उस प्रेमका ज्ञान नहीं रहता। उसका ज्ञान तो तभी होता है जब मनुष्य प्रेम नहीं करता; 'प्रेम नहीं करता' नहीं, बल्कि जब वह किसीसे डरने लगता है। (मैं भिखारियोंसे या वोल्कोंस्कीसे, जो मुझे चुटकी लिया करता था, इसी प्रकार डरता था, लेकिन मैं समझता हूँ कि इनके अतिरिक्त मैं किसीसे नहीं डरता था), अथवा जब कोई आदमी किसी एक आदमीसे ही विशेष प्रेम करने लगता है. जिस प्रकार कि मैं अपनी बुआ टाशियाना

ऐलेक्जेंड्रवोनासे या अपने भाई सर्जी और निकोलससे; वेसिली, धाय ईसेव्ना और पेशेंकासे प्रेम करता था।

डिमिटीके बचपनके संबंधमें सिवाय इसके कि वह बड़े प्रसन्न-चित्त रहते थे, मुझे कुछ भी याद नहीं। सन् १८४०में, जब उनकी आयु १३ वर्षकी थी, हम दोनों कजान विश्वविद्यालयमें गये; और उस समय मुझे उनकी विशेषताएं पहले-पहल मालूम हुई और उनका मुझ पर प्रभाव पड़ा। उसके पहले मैं उनके विषयमें केवल इतना जानता था कि वह उस प्रकार प्रेममें नहीं पड़ते जिस तरह मैं और सर्जी; और न नाच-रंग और सैनिक-प्रदर्शन ही पसंद करते थे। वह पढ़ते बहुत थे। पोलोंस्की नामके एक अंडर-ग्रेजुएट शिक्षक हमें पढ़ाया करते थे। हम भाइयों के विषयमें उन्होंने अपनी राय यों प्रकट की थी : 'सर्जी पढ़ना चाहता है और पढ़ भी सकता हैं; डिमिट्री चाहता तो है, लेकिन पढ़ नहीं सकता (लेकिन यह ठीक नहीं था) और लियो टाल्स्टाय न तो चाहता ही है और न पढ़ सकता है (हां, मेरे विषय में यह बिलकुल ठीक था।)'[1]

इस प्रकार डिमिट्रीके विषयमें मेरी स्मृति कजानसे आरंभ होती है। वहां हर बातमें सर्जीका अनुकरण करते-करते मैं बिगड़ने लगा। उस समय और उसके पहले भी मुझे अपने बनाव-सिंगारकी चिंता रहने लगी। मैं मैं चिकना-चुपड़ा दिखाई पड़नेका प्रयत्न करने लगा डिमिट्रीको ये बातें छू भी न गई थीं। मेरा तो खयाल है कि वह जवानीके अवगुणोंसे सदा दूर रहे। वह सदा गंभीर, विचारवान, शुद्ध और दृढ़ रहते थे, यद्यपि उन्हें क्रोध जल्दी आ जाता था। वे जो काम करते थे उसे सारी शक्ति लगाकर करते थे। जब उन्होने पीतलकी जंजीर निगल ली थी, उस समय भी जहां-तक मुझे याद है, एक बार जब मैंने एक बेरकी गुठली, जो मुझे 'बुआ'ने दी थी, निगल ली थी तो मुझे कितना डर लगा था, और मैंने किस गंभीरतासे वह दुर्घटना अपनी माता से कही थी, मानो मैं मर हो रहा होऊं।

१ लेकिन दूसरे स्थानपर टॉल्स्टॉयने इससे बिलकुल उल्टी बात कही है और निकोलसको भी लपेट लिया है।—सं०

एक बार हम सब बच्चे एक पहाड़ी परसे बर्फ पर फिसलनेवाली लकड़ीकी चट्टियोंपर फिसल रहे थे । इतनेमें एक आदमी स्लेज-गाड़ीमें बैठा हुआ सड़क-सड़क जानेके बजाय पहाड़ी पर चढ़ आया । शायद सर्जी और एक ग्रामीण बालक उस समय फिसलकर नीचे आ रहे थे । वे अपनेको रोक न सके और घोड़ेके पैरोंके पास जाकर गिर पड़े । उन्हें चोट नहीं लगी, और स्लेज-गाड़ी पहाड़ी की ओर चली गई । हम सब तो यही देखनेमें दत्त-चित्त थे किस प्रकार वे घोड़ेके पैरोंके नीचेसे बच-कर निकले, किस प्रकार घोड़ा भड़ककर एक ओरको हटा, आदि आदि । लेकिन डिमिट्री, जिनकी आयु उस समय केवल ९ वर्षकी थी, उठकर सीधे उस आदमीके पास गये और उसे फटकारने लगे । उन्होंने उससे यह कहा कि ऐसी जगह गाड़ी चलाने पर, जहां कि कोई सड़क नहीं है तुम अस्तबलमें भेजे जाने योग्य हो जिसका उस समय यह अर्थ था कि तुम्हारी पिटाई कोड़ोंसे होनी चाहिए, तो मुझे कुछ आश्चर्य भी हुआ और कुछ बुरा भी लगा ।

उनकी विशेषताएं तो पहले-पहल कजानमें मालूम हुई । वह जी लगाकर बहुत अच्छी तरह पढ़ते और बड़ी सुगमतासे कविता भी कर लेते थे । उन्होंने शिलर की कविता 'डर जुंगलिंग एम बाशे'का बड़ा सुंदर अनु-वाद किया था । लेकिन कविताके धंधेमें उन्होंने कभी अपनेको नहीं लगाया । एक दिन वह बहुत ज्यादा मजाक करने लगे । इससे लड़कियोंका बड़ा मनोरंजन हुआ । इसपर मुझे उनसे कुछ ईर्ष्या हुई । मैंने सोचा कि लड़कियां इसलिए प्रसन्न हैं कि वह सदा गंभीर रहते हैं, और उसी तरह उनकी नकलमें गंभीर बननेकी मेरी भी इच्छा हुई । मेरी बुआ (पेला-गेया इलीनिश्ना) को सनक हुई कि हमारी सेवाके लिए एक-एक दास बालक रखें,जो बादमें हमारा विश्वास-पात्र खिदमतगार हो सके । डिमिट्रीके लिए उन्होंने एक दास वेनयूशा दिया जो अभी तक जीवित है । डिमिट्री उसके साथ बड़ा बुरा बर्ताव करते और मेरा खयाल है कि उसे पीटते तक थे 'खयाल है', मैं इस लिए कहता हूँ कि मैंने उन्हें कभी मारने-पीटने तो

देखा नहीं, लेकिन मुझे याद है कि एक दिन वह वेनयूशाके सामने उसके प्रति किये गये व्यवहारके लिए पश्चात्ताप कर रहे थे और उससे नम्र शब्दोंमें क्षमा मांग रहे थे।

मुझे तो यह नहीं मालूम कि किस प्रकार या किसके प्रभावसे वह धार्मिक जीवनकी ओर खिंचे, लेकिन उनका धार्मिक-जीवन विद्यालयमें प्रविष्ट होनेके पहले ही सालमें आरंभ हो गया। धार्मिक जीवनकी ओर प्रवृत्ति होनेके कारण स्वभावतः वह चर्चकी ओर झुके और अपने स्वाभाविक अध्यवसायके साथ धार्मिक-साहित्यका अध्ययन करने लगे। वह बड़ा सादा भोजन करने, गिरजेमें सभी प्रार्थनाओं और उपदेशोंके समय जाते वह अधिकाधिक कठोर जीवन बिताने लगे।

डिमिट्रीमें एक असाधारण गुण था और मुझे विश्वास है कि वह गुण मेरी माता और मेरे बड़े भाई निकोलसमें भी था, लेकिन मुझमें बिलकुल नहीं था। वे इस बातसे पूर्णतया उदासीन रहते कि दूसरे लोग मेरे बारेमें क्या खयाल करते हैं। बुढ़ापे तकमें मुझे चिंता रहती हैकि दूसरे लोग मेरे बारेमें क्या खयाल करते है, लेकिन डिमिट्री इस चिंतासे बिलकुल मुक्त थे। जब कोई आदमी किसीकी प्रशंसा करता है तो अनिच्छा होते हुए भी वह मुस्करा देता है। लेकिन मुझे याद नहीं कि मैंने कभी उनके मुखपर इस तरहकी मुस्कराहट देखी हो। मुझे तो उनकी बड़ी-बड़ी शांत, गंभीर और विचारशील आंखें ही याद हैं। केवल कजान विद्यालयमें रहनेके समय ही हमने उनकी ओर विशेष ध्यान देना आरंभ किया और वह भी इसलिए कि उस समयतक हम बाहरी बनाव-संवारपर ज्यादा जोर देने लगे थे और वह मैले-कुचैले और गंदे रहते थे और इस कारण हम सदा उनकी निंदा किया करते थे। वह न तो नाच देखने जाने और न नाच सीखना ही चाहते थे। एक विद्यार्थी के नाते वह अन्य विद्यार्थियोंकी गोष्टीमें भी नहीं जाते थे। केवल एक कोट पहनते और गलेमें पतला-सा तंग रूमाल बांधते थे। युवावस्थासे ही उनको मुंह बनानेकी आदत पड़ गई थी। वह हर समय अपना

सिर घुमाते रहते थे मानों तंग रूमालसे अपना पिंड छुड़ानेकी कोशिश कर रहे हों।

जिस समय उन्होंने उपासना (कम्युनियन) के निमित्त पहला उपवास किया, उस समय उनकी विशेषताएं पहली बार मालूम हुईं। उन्होंने यह उपवास विश्वविद्यालयके फैशनेबुल गिर्जेमें न करके जेलके गिर्जेमें किया। उस समय हम जेलके ठीक सामने गोटालोवके मकानमें रहते थे। इस गिर्जेमें एक बड़े धार्मिक और कट्टर पादरी थे। यह एक असाधारण बात थी; क्योंकि उस समय पादरी न तो धर्मिष्ठ होते थे और न धर्माचरणके नियमोंका कड़ाईके साथ पालन करते थे। यह पादरी महोदय धार्मिक सप्ताहमें इंजील तथा ईसामसीह व उनके अनुयायियोंके ग्रंथोंका—जिनको पढ़नेका यद्यपि शास्त्रोंमें विधान है, परंतु लोग जिन सब ग्रंथोंको कम ही पढते थे—आद्योपांत पाठ करते थे। इसी कारण इस गिर्जेके उपदेश बड़ी देरमें समाप्त हुआ करते थे। डिमिट्री इन सब कथाओं और उपदेशोंको खड़े होकर सुना करते थे। उन्होंने पादरीसे भी जान-पहचान करली थी। गिर्जाघर इस प्रकार बना हुआ था कि गिर्जाघर और उस स्थानके बीचमें जहां कैदी खड़े होकर उपदेश सुना करते थे, एक शीशेकी दीवार थी और उसमें एक छोटा-सा दरवाजा था। एक बार एक कैदीने उस दरवाजेके भीतरसे एक छोटे पादरीको कुछ देना चाहा। वह या तो मोमबत्ती थी या उसके लिए कुछ पैसे थे। कोई यह काम करनेके लिए तैयार न हुआ, लेकिन डिमिट्रीने अपनी स्वाभाविक गंभीर मुद्राके साथ उसे उठा लिया और छोटे पादरीको दे दिया। यह काम ठीक नहीं था और इसकेलिए उन्हें भला-बुरा भी कहा गया; लेकिन चूंकि वह समझते थे कि यह काम किया जाना चाहिए, अतः वह दूसरे अवसरोंपर भी यह काम करते रहे।

जब हम दूसरे मकानमें चले गये तबकी एक घटना मुझे याद है। हमारे ऊपर के कमरे दो हिस्सोंमें बंटे हुए थे। एक भागमें डिमिट्री रहते थे और दूसरेमें सर्जी और मैं। बड़े आदमियोंके समान सर्जीको और मुझे अपनी-अपनी मेजों पर आभूषण तथा अन्य चीजें, जो हमें भेंटमें

मिलती थीं, सजाकर रखनेका शौक था लेकिन डिमिट्रीके पास ऐसी कोई चीज नहीं थीं। उन्होंने पिताजीसे केवल एक ही वस्तु ली थी और वह उनका रंग-बिरंगे पत्थरोंका संग्रह था। उन्होंने उनको सजाकर और उनपर लेबिल लगाकर एक शीशेके ढक्कन वाले बक्समें रख छोड़ा था। चूंकि हम सब भाई और हमारी बुआ डिमिट्रीकी इन निम्न कोटिकी रुचियों और उनके निम्न श्रेणीके परिचितोंके कारण उन्हें कुछ घृणाकी दृष्टिसे देखती थी, अतः हमारे दंभी मित्र भी उनके प्रति यही रुख रखते थे। उनमेंसे एक 'ऐस' था। वह एक इंजीनियर था और बड़ी क्षुद्र प्रकृतिका था। उसे हमने मित्र नहीं बनाया था, मगर वह स्वयं हमारे पीछे पड़ा रहा और हमारा मित्र बन गया था। एक दिन उसने डिमिट्रीके कमरेसे निकलते हुए, उनके रंग-बिरंगे पत्थरोंके संग्रहको देखकर उनसे एक प्रश्न कर दिया। 'ऐस' का व्यवहार असहानुभूतिपूर्ण और अस्वाभाविक था। डिमिट्रीने उसके प्रश्नका अनिच्छासे उत्तर दिया। इसपर 'ऐस'ने उस बक्सको सरकाकर जोरसे हिला दिया। डिमिट्रीने कहा—'उसे छोड़दो।' 'ऐसने उनकी बात न मानी और उनके साथ मजाक किया। और यदि मुझे ठीकसे याद है तो उसने उन्हें 'नूह'[1] पुकारा था। डिमिट्रीको इसपर भीषण क्रोध आया और उन्होंने 'ऐस' के मुंहपर अपने भारी हाथसे एक थप्पड़ जोरसे मारा। 'ऐस' भागा और डिमिट्री उसके पीछे-पीछे भागे। दोनों भागकर हमारे कमरेकी तरफ आये तो हमने 'ऐस'को अंदर लेकर दरवाजा बंद कर दिया। इसपर डिमिट्रीने कहा कि अच्छा, जब 'ऐस' मेरे कमरेसे होकर वापस जायेगा तब मैं उसे पीटूंगा। सर्जी और मुझे याद पड़ता है, शायद शुवालोव डिमिट्रीको मनानेके लिए भेजे गये कि वह 'ऐस' को चला जाने दें, परंतु वह झाड़ू लेकर बैठ गये और बोले कि मैं उसे अच्छी तरह पीटूंगा। मुझे नहीं मालूम कि यदि 'ऐस' उनके कमरेमेंसे जाता तो वह क्या करते, लेकिन उसने हमसे किसी दूसरे रास्तेसे निकालनेकी प्रार्थनाकी और हमने उसे ऊपर छतवाले कमरेसे किसी प्रकार रेंग-रांगकर निकला।

१ 'नूह' संबोधनका उल्लेख 'मेरी मुक्तिकी कहानीके पृ० ४ पर है।

टॉल्स्टॉयने एक बार एक सिपाहीकी पैरवीकी थी जिस पर अपने अफसर पर हाथ उठानेके अभियोगमें फांसीकी सजा देनेकेलिए मुकदमा चल रहा था। टाल्स्टायकी जीवनीके लेखक बीरूकोवने टॉल्स्टॉयसे इस घटनाका विस्तृत वर्णन मांगा। उस पर टॉल्स्टॉयने उन्हें निम्न पत्र लिखा:—

प्रिय मित्र पावेल इवानोविच,

तुम्हारी इच्छा पूरी करने और तुमने अपनी पुस्तकमें जिस सिपाहीकी पैरवी करने का उल्लेख किया है उसके संबंधमें मेरे क्या विचार थे इसपर पूरा प्रकाश डालनेमें मुझे बड़ी प्रसन्नता है। भाग्यके उलट-फेरों, संपत्तिका विनाश या प्राप्ति, साहित्यिक-जगतमें सफलता या असफलता, अपने प्रिय-से-प्रिय संबंधियोंकी मृत्यु जैसी अधिक महत्त्वपूर्ण घटनाओंसे भी अधिक उस घटनाका मेरे जीवनपर प्रभाव पड़ा है।

मैं पहले तो यह बतलाऊंगा कि यह सब कैसे हुआ, और उसके बाद यह बतलाऊंगा कि उस घटनाके समय और कब उसकी स्मृतिसे मेरे मनमें क्या-क्या भावनाएं और विचार पैदा हुए हैं।

मुझे यह याद नहीं कि उस समय में किस खास काम में लगा हुआ था। शायद आप यह बात मुझसे अधिक अच्छी तरह जानते होंगे। मुझे तो बस इतना ही याद है कि उस समय मैं एक शांत, संतुष्ट और आत्माभिमानसे पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा था। सन् १८६६ की गर्मियोंमें हमारे पास सैनिक पाठशालाका एक विद्यार्थी ग्रीशा कोलोकोल्टसेव, जो बेहरोंको जानता था और मेरी पत्नीका परिचित भी था, अचानक हमारे पास आया। मालूम हुआ कि वह सेनाकी एक टुकड़ीमें, जो हमारे पास ही पड़ाव डाले हुई थी, नौकर था। वह प्रसन्न-चित्त और अच्छे स्वभावका लड़का था और उस समय अपने छोटेसे कज्जाक घोड़े पर उछल-उछलकर दौड़ानेमें ही उसका समय बीतता था। अक्सर वह अपने घोड़े पर सवार होकर हमारे पास भी आया करता था।

उसके द्वारा हमारा उसकी टुकड़ीके सेनापति जनरल यू...और ए.

एम. स्टासयूलेविचसे परिचय हो गया। स्टासयूलेविच या तो पदमें घटा दिया गया था या किसी राजनीतिक मामलेके कारण सैनिककी हैसियतमें काम करनेको भेजा गया था (मुझे ठीक कारण याद नहीं है)। वह प्रसिद्ध संपादक स्टासयूलेवेचिका भाई था। स्टासयूलेविचकी जवानी बीत चुकी थी। जब हमारा परिचय हुआ उसी वक्तके करीब उसकी तरक्की हुई थी, और वह ध्वजाग्राहक बना दिया गया। वह अपने पुराने साथी यू...की सेनामें, जोकि अब उसका कर्नल था, आ गया था। यू...और स्टासयूलेविच दोनों अक्सर घोड़ों पर चढ़कर हमारे पास आया करते थे। कर्नल यू...हृष्ट-पुष्ट, लाल सुर्ख चेहरे और अच्छे स्वभाववाला कुछ उस प्रकारका अविवाहित व्यक्ति था जैसे कि साधारणतया होते हैं। उच्चपद और ऊंची सामाजिक स्थितिने उसकी मानवी-प्रवृत्तियोंको दबा दिया था। अपने पद और मानको बनाये रखना उसके जीवनका एकमात्र उद्देश्य था। मानवी दृष्टिसे यह कहना कठिन है कि ऐसा आदमी विवेकी या सज्जन है, क्योंकि ऐसे मनुष्यके विषयमें कोई यह नहीं जानता कि यदि वह एक कर्नल या प्रोफेसर या मंत्री; या न्यायाधीश या एक पत्रकार न रहकर एक साधारण आदमी रह जाये तो कैसा होगा? यही हाल केवल यू...का था। वह एक सेनाकी टुकड़ीका कार्यवाहक सेनापति था, लेकिन वह किस प्रकारका मनुष्य था, यह कहना असंभव था। मेरा तो यह खयाल है कि वह अपने-आपको भी न जानता होगा और न इसमें उसकी दिलचस्पी ही थी। स्टासयूलेविच इसके विपरीत था। यद्यपि अनेक प्रकारसे, विशेषकर उसके दुर्भाग्य और अपमानोंसे, जो उस-जैसे महत्त्वाकांक्षी और आत्माभिमानी मनुष्यको बड़े दुःखके साथ सहने पड़े, उसका विनाश हो चुका था, परंतु वह फिर भी जीवनसे भरा हुआ मनुष्य था। कुछ दिनों बाद वह दिखाई ही नहीं पड़ा। जब उनकी सेना किसी दूसरे स्थान पर चली गई उस समय मैंने सुना कि उसने बिना किसी व्यक्तिगत कारणके विचित्र रीतिसे आत्महत्या कर ली। एक दिन सवेरे उसने एक बहुत भारी फौजी ओवरकोट पहना और उसे

पहनकर नदीमें उतर गया। चूंकि वह तैरना नहीं जानता था, अतः नदीमें डूबकर मर गया।

मुझे याद नहीं कि कोलोकोल्टसेव या स्टासयूलेविच दोनोंमेंसे किसने गर्मीके दिनोंमें एक दिन सबेरे आकर एक घटना सुनाई जो सेनामें एक असाधारण और भयानक बात थी। एक सिपाहीने एक कंपनी कमांडरको मारा था। स्टासयूलेविच इस विषय पर जरा जोरसे बोल रहा था। उस सिपाहीके भाग्यके फैसले (अर्थात् मृत्यु-दंड) के प्रति उसके हृदयमें सहानुभूति थी। उसने मुझे फौजी पंचायतके सामने उस सिपाहीकी वकालत करनेकी सिफारिश की।

यहांपर मैं यह कह देना चाहता हूँ कि मुझे इस बातसे कि एक आदमी जज बनकर किसीको मौतकी सजा दे और अन्य आदमी (अर्थात् बधिक) उसे मौतके घाट उतारें केवल एक धक्का ही नहीं लगता था, बल्कि सब कुछ असंभव और कृत्रिम लगता था। ऐसे भीषण कृत्यके संबंधमें यह जानते हुए भी कि वह पहले हो चुका है, और अब भी प्रतिदिन हो रहा है, उस पर विश्वास नहीं होता था। मृत्यु-दंड दिये जाते हैं, यह मुझे मालूम है, फिर भी वे मुझे एक असंभाव्य कार्य मालूम पड़ते रहे हैं।

यह बात मेरी समझमें आती है कि क्षणिक आवेशमें घृणा और प्रतिहिंसाके वशीभूत हो अथवा मानवी भावनाओं के नाश होनेके कारण एक आदमी अपनी या अपने मित्रकी आत्म-रक्षाके लिए किसीको मार सकता है, अथवा युद्धके समय देश-भक्तिके नशेमें, जिस समय मनुष्य मरने-मारनेके लिए कटिबद्ध होता है, उस समय वह एक साथ सहस्रों आदमियोंके संहारमें भाग ले सकता है। लेकिन यह बात मेरी समझमें नहीं आती कि आदमी अपने उपर नियंत्रण रखते हुए, शांतिसे और जान-बूझकर अपने किसी भाईको मारनेकी आवश्यकता स्वीकार कर सकता है और दूसरोंको मानव-स्वभावके सर्वथा विपरीत यह कार्य करनेकी आज्ञा दे सकता है। यह बात मेरी समझमें उस समय भी नहीं आई थी, जब कि मैं सन् १८६६में अहंकारी जीवन व्यतीत कर रहा था। इसीलिए मैंने

आशा भरे हृदयसे उस सिपाहीकी वकालत करनेका विचित्र निश्चय किया।

मुझे आजेरकी गांवमें उस स्थान पर जानेकी अच्छी तरह याद है, जहां वह कैदी सिपाही रखा गया था (मुझे यह याद नहीं कि वह कोई खास मकान था कि वही मकान था जिसमें वह कांड हुआ था) ईंटोंके एक नीची छतवाले झोपड़ेमें घुसनेपर मैंने एक ठिगनेसे आदमीको देखा। वह लंबा होनेके बजाय हृष्ट-पुष्ट अधिक था, जो कि सिपाहियोंके लिए असाधारण बात थी। उसकी मुखाकृति बड़ी सरल, अपरिवर्तनशील और शांत थी। मुझे यह याद नहीं कि उस समय मेरे साथ दूसरा आदमी कौन था? परंतु जहां तक मुझे याद है वह कोलोकोल्टसेव था। जैसे ही हम घुसे वह आदमी फौजी ढंगसे उठ खड़ा हुआ। मैंने उससे कहा कि मैं तुम्हारा वकील होना चाहता हूँ; अतः तुम मुझे ठीक-ठीक बता दो कि वह घटना किस प्रकार घटी। उसने बहुत थोड़ी बातें बताईं और मेरे प्रत्येक प्रश्नके उत्तरमें बड़ी उदासीनता और अनिच्छासे यही उत्तर दिया—'हां, यही हुआ था।' उसके उत्तरोंसे तो यही निष्कर्ष निकलता था कि वह काम करनेमें सुस्त था और उसका कप्तान बड़ी कड़ाईसे काम लेता था। उसने कहा—'उसने मुझसे बड़ा सख्त काम लिया।'

जैसा कि मैंने समझा कि उसके यह कांड कर बैठनेका कारण यही था कि कुछ महीनेसे कप्तानने,—जो बाहरसे देखनेमें बड़ा शांत था—अपने उकता देनेवाले एकरस स्वरमें एकही कामको, जो उस आदमीने (वह दफ्तरका अर्दली था) अपनी समझसे ठीक-ठीक किया था दुबारा करनेकी आज्ञाएं दे देकर और उन आज्ञाओंका बिना ननु-नचके पालन कराकर, इतना उत्तेजित कर दिया कि वह सबकी सारी सीमाओंको लांघ गया, और उसकी हालत 'मरता क्या न करता' जैसी हो गई। मेरा खयाल है कि उन दोनोंमें परस्पर एक-दूसरेके प्रति कुछ घृणाके भाव भी थे। जैसा कि बहुधा होता है, कंपनी-कमांडर उस अर्दलीके प्रति विरोध-भावना रखने लगा था। उसे यह संदेह हुआ कि यह अर्दली मेरे पोल होनेके

कारण मुझसे घृणा करता है। इससे इसकी यह विरोध-भावना और बढ़ गई। उसने अफसर होनेका लाभ उठाकर उसके हर कामसे असंतोष प्रगट करना और सब कामको, जिसे वह आदमी समझता था कि उसने ठीक किया है, दुबारा करनेके लिए उसे वाध्य करना आरंभ किया। अर्दली भी उसके पोल होने, उसकी योग्यता पर विश्वास न करने और सबसे अधिक उसके ऊंचा अफसर होनेके कारण, जिससे वह उसकी कोई शिकायत न कर सकता था, उससे घृणा करता था। अपनी घृणा व्यक्त करनेका कभी अवसर न मिलनेके कारण वह आग भीतर-ही-भीतर सुलगती रही और प्रत्येक डांट-फटकारके साथ बढ़ती गई। अपनी सीमा पर पहुँचकर वह आग उस रूपमें भड़क उठी, जिसका कि उसने स्वप्नमें भी विचार नहीं किया था। तुमने तो मेरी जीवनीमें यह लिखा है कि उस आदमीकी क्रोधाग्नि कप्तानके यह कहनेसे कि वह कोड़ोंसे उसकी खाल उधड़वा देगा, भभक उठी, गलत है। कप्तानने उसे केवल एक कागज वापस दिया और उससे उसे ठीक करने और दुबारा लिखनेके लिए कहा था।

पंच शीघ्रही नियत कर दिये गये। सरपंच कर्नल यू······थे तथा कोलोकोल्टसेव तथा स्टासयूलेविच सहायक पंच थे। कैदी पंचोंके सामने लाया गया। अदालती शिष्टाचारके बाद, जिसके संबंधमें मुझे कुछ याद नहीं रह गया है, मैंने अपना भाषण पढ़ा, जो मुझे अब केवल विचित्र ही नहीं लगता है, बल्कि लज्जासे भर देता है। पंचोंने भी केवल शिष्टाचारके नाते वे सब निरर्थक बातें, जो मैंने बहुतसे कानूनी ग्रंथोंका हवाला देते, कहीं—सुनीं और सब कुछ सुननेके बाद आपसमें सलाह करनेके लिए चले गये। उस पारस्परिक विचार-विनिमयके समय, जैसा कि मुझे बादमें मालूम हुआ, केवल स्टासयूलेविच ही उस मूर्खतापूर्ण कानूनी नजीरसे सहमत था जिसके आधार पर मैंने कहा था कि कैदीको इसलिए छोड़ दिया जाना चाहिए कि वह अपने कामके लिए उत्तरदायी नहीं है। सदाशय कोलोकोल्टसेव यद्यपि वही करना चाहता था जो मैं चाहता था, परंतु अंतमें वह कर्नल यू······के सामने झुक गया और उसके मतने

मामलेका फैसला कर दिया। सिपाहीको गोलीसे उड़ाकर मारनेकी सजा सुना दी गई। मुकदमा समाप्त होनेके बाद शीघ्र ही मैंने एक संभ्रांत महिला एलेक्जेंड्रा एंड्रोवना टॉल्स्टॉयको; जो मेरी घनिष्ट मित्र थीं और जिनकी राज-दरबारमें पहुँच थी, लिखा कि वह सम्राट एलेक्जेंडर द्वितीयसे शिबूनिन को क्षमा दिला दें। मैंने उन्हें उसे लिखा तो सही, लेकिन चित्त अस्थिर होनेके कारण उस रेजिमेंटका नाम देना भूल गया, जिसमें शिबूनिन था। उसने युद्ध-मंत्री मिलयूटिनको भी लिखा; परंतु उसने भी यही कहा कि उस रेजिमेंट का नाम दिये बिना सम्राटके सामने आवेदन-पत्र पेश करना असंभव है। उसने मुझे लिखा। मैंने जल्दी-से-जल्दी उत्तर दिया लेकिन रेजिमेंटके कप्तानने भी जल्दी की। अतः जिस समयतक सम्राटके सामने पेश करनेकेलिए आवेदन-पत्र तैयार हुआ उस समयतक उस सिपाहीको गोलीसे उड़ा दिया गया।·······

उस सिपाहीकी सफाईमें मैंने जो उल्टा-सीधा; मूर्खतापूर्ण भाषण दिया था और जिसे अब तुमने प्रकाशित किया है, उसे दुबारा पढ़कर मेरी आत्मा विद्रोह करती है। दैवी और मानवी कानूनोंके खुले तौरपर तोड़े जानेका उल्लेख करतेहुए, जो मनुष्य अपने भाइयोंके विरुद्ध कर रहा है, मैंने जो कुछ किया था वह यही था कि कुछ मूर्खतापूर्ण शब्द उद्धृत कर दिए थे, जिन्हें मनुष्यने लिखकर कानूनका रूप देदिया है।

वास्तवमें अब मैं उस उल्टी-सीधी और मूर्खतापूर्ण वकालतपर लज्जित हूँ। अगर एक आदमी यह जानता है कि ये आदमी क्या करनेकेलिए इकट्ठा हुए हैं—वे अपनी फौजी वर्दीमें मेजके तीन तरफ बैठे और सोच रहे हैं कि कुछ शब्दोंके कारण, जो कुछ पुस्तकोंमें लिखे हुए हैं और अनेक शीर्षों और उपशीर्षोंके साथ कागज पर छपे हुए हैं, वे अनंत ईश्वरीय कानूनको, जो यद्यपि किसी पुस्तकमें छपा हुआ नहीं है, परंतु प्रत्येक मानवके हृदय पर अंकित है, तोड़ सकते हैं; तब उनके सामने उन मूर्खतापूर्ण और झूठे शब्दों द्वारा (जिन्हें हम कानून कहते हैं) चतुरता से सिद्ध करनेकी कोई जरूरत नहीं कि किसी आदमीको मौतसे मुक्त कर

देना संभव है। उन्हें तो सिर्फ यह याद करानेकी जरूरत है कि वे कौन हैं और क्या कर रहे हैं? हर एक आदमी यह जानता है कि प्रत्येक मनुष्यका जीवन पवित्र है; और किसी दूसरेको किसीका प्राण लेनेका कोई अधिकार नहीं है। इसको सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसे किसी प्रमाण-द्वारा सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं। हां, एक बात आवश्यक, संभव और ठीक है। वह यह कि आदमियों—जजों—को उस जड़तासे मुक्त करना जिसके कारण उनमें यह पाशविक और अमानुषिक विचार आता है। यह सिद्ध करना कि एक आदमीको दूसरेको मौतकी सजा नहीं देनी चाहिए, यही सिद्ध करनेके बराबर है कि एक आदमीको वह काम नहीं करना चाहिए, जो उसकी प्रकृतिके प्रतिकूल और अंतरात्माके विरुद्ध हो अर्थात् उसे जाड़ेमें नंगा नहीं फिरना चाहिए, नाबदानकी वस्तुएं नहीं खानी चाहिएं और चारों हाथ-पांव नहीं चलाना चाहिए। यह मनुष्य की प्रकृति और आत्माके विरुद्ध है, यह बात आजसे वर्षों पूर्व उस स्त्रीकी कहानी-द्वारा, जिसे पत्थरसे मार-मारकर मार डाला जाने वाला था, सिद्ध हो चुकी है

क्या यह संभव है कि मनुष्य (कर्नल यू...और ग्रिसा कोलोकोल्ट-सेव जैसे) अब इतने न्यायप्रिय हो गये हैं कि उन्हें पहला पत्थर फेंकने-(दूसरोंको अपराधी करार देने) में कोई डर नहीं है।

उस समय मैं यह बात नहीं समझता था। जब मैंने अपनी चचेरी बहिन टॉल्स्टॉयाके द्वारा शिबूनिनको क्षमा दिलानेका आवेदन-पत्र दिया, उस समय भी यह बात नहीं समझता था। उस समय मैं कितने भ्रममें था कि शिबूनिनके साथ जो-कुछ हुआ वह एक साधारण-सी बात है। अपने उस भ्रम पर मुझे अब आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता।

उस समय मैं ये सारी बातें नहीं समझता था। उस समय तो मेरे मनमें एक अस्पष्ट-सी भावना थी कि जो-कुछ हो गया है वह नहीं होना चाहिए; और यह घटना कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि इसका

मानव-जातिकी अन्य भूलों और पीड़ाओंसे गहरा संबंध है, और यह सबके मूल (जड़) में है।

उस समय भी मेरे मनमें एक अस्पष्ट भावना थी कि मौतकी सजा—जान-बूझकर, सोच विचारकर और पहलेसे निश्चय करके की गई हत्या—वह कृत्य है जो कि ईसाई धर्मके (जिसके हम अनुयायी हैं) खिलाफ है। वह विवेकशील जीवन और नैतिकता भंग करनेवाली चीज है। क्योंकि अगर एक आदमी या कुछ आदमी मिलकर यह निश्चय करें कि एक आदमी या किसी दलका बध करना आवश्यक है तो दूसरे आदमी या दलको किसीकी हत्या करनेसे कौन रोक सकता है? और क्या उन आदमियोंका जीवन विवेकशील और नैतिक हो सकता है, जो अपनी इच्छानुसार एक दूसरेको मार सकें?

मैं उस समय भी यह महसूस करता था कि धर्म और विज्ञान मौतकी सजाके लिए जो युक्तियां देते हैं, इनके द्वारा हिंसा करनेकी न्यायोचितता सिद्ध होनेके स्थान पर उल्टे धर्म और विज्ञानका खोखलापन ही सिद्ध होता है। मुझे यह अनुभव पहली बार पेरिसमें हुआ जब मैंने एक फांसीका दृश्य दूरसे देखा।[1] परंतु जब मैंने इस मामलेमें भाग लिया तो मेरे मनमें इस संबंधमें जोरदार भावनाएं उठीं। फिर भी मुझे अपने ऊपर विश्वास करनेमें और संसारके निर्णयसे अपनेको विलग करनेमें डर लगता था। बहुत दिनोंके बाद मुझे अपनी धारणाओंमें विश्वास पैदा हुआ और उन दो महाभयानक जालोंको अस्वीकार कर सका जिनकी मुट्ठीमें सारा संसार है, और जो सब पीड़ाएं और उत्पीड़न पैदा करते हैं, जिनसे मानव-जाति कष्ट पा रही है। ये दोनों जाल चर्च और विज्ञान हैं।

बहुत दिनों बाद जब मैंने उन युक्तियोंका ध्यानसे अध्ययन करना आरंभ किया, जो 'चर्च' (धर्म-संस्था) और विज्ञान आजकलके राजतंत्रके समर्थनमें दिया करते हैं, तब मैं उन दो बड़े जालोंको स्पष्ट जान गया,

१ यह घटना सन् १८५७ की है और 'कनफेशन' के १२वें पृष्ठ पर उसका वर्णन किया गया है।

जिनके द्वारा वे राज्यकी काली करतूतों पर परदा डालना और उन्हें जनता-से छिपाना चाहते है। मैंने लाखों और करोड़ोंकी संख्यामें प्रचारित धर्म व विज्ञानकी पुस्तकोंके उन लंबे-लंबे अध्यायोंको पढ़ा है जिनमें कुछ आदमियोंकी इच्छानुसार दूसरोंको फांसी पर चढ़ा देनेके औचित्य और आवश्यकताकी सफाई पेशकी गई है।

विज्ञानके दोनों प्रकारके ग्रंथोंमें—जिसे न्याय-शास्त्र (जुरिस्प्रुडेंस) कहते हैं व जिसमें फौजदारी कानून भी शामिल हैं उसमें और विशुद्ध विज्ञान-संबंधी ग्रंथोंमें—यही बात अधिक संकीर्णता और विश्वासके साथ तर्क-पूर्वक दी गई है। फौजदारी कानूनके संबंधमें तो कुछ भी कहनेकी जरूरत नहीं है। वह तो सफेद झूठ, छल और प्रपंचोंका क्रमागत इतिहास ही है जो मनुष्य द्वारा मनुष्यपर किये गये सभी प्रकारके हिंसात्मक कामोंको, यहां-तक कि मनुष्य-द्वारा मनुष्यकी हत्याको भी, न्यायोचित ठहराता है। और डार्विनसे लेकर अबतकके वैज्ञानिक ग्रंथोंमें भी जो जीवन-संघर्षको जीवन-का आधार मानते हैं, यही बात निहित है। जेना विश्वविद्यालयके प्रोफेसर अर्नेस्ट हेकेल जैसे सिद्धांतके जबर्दस्त समर्थक अपनी पुस्तक संदेह-वादियोंकी गीता Naturliche Schopfungsge schichte में स्पष्ट लिखते हैं :—

"मानव-जातिके सांस्कृतिक जीवनमें कृत्रिम चुनाव बहुत लाभदायक प्रभाव डालता है। उदाहरणके लिए श्रेष्ठ स्कूली शिक्षा और लालन-पालनका संस्कृतिकी बहुमुखी प्रगतिमें कितना भारी स्थान है। यद्यपि आज कल बहुतसे आदमी मौतकी सजा 'उदार भाव'से उड़ा देनेकी बड़े जोर-शोर-से वकालत कर रहे हैं, और मानवताके थोथे नाम पर अपने पक्षमें बहुत-सी युक्तियां दे रहे हैं, लेकिन मौतकी सजा भी कृत्रिम चुनावकी भांति लाभदायक प्रभाव डालती है। जिस प्रकार एक सुंदर उद्यानको बनाये रखनेके लिए घास-फूस और झाड़—झंखाड़ उखाड़ फेंकते रहने की आव-श्यकता है; उसी प्रकार उन बहुसंख्यक अपराधियों और बदमाशोंके लिए, जो कभी ठीक ही नहीं हो सकते, मौतकी सजा केवल उचित दंड

ही नही हैं, बल्कि संस्कृत मानव-जातिके लिए बड़े लाभकी चीज है। जिस प्रकार घास-फूसको ठीकसे साफ करने पर पेड़ों और पौधोंको अधिक वायु, प्रकाश और बढ़नेके लिए जगह मिलती हैं, ठीक उसी प्रकार कठोर अपराधियोंका सफाया कर देनेसे संस्कृत' मानव-जातिका 'जीवन-संघर्ष' केवल कम ही नही हो जायेगा, बल्कि कृत्रिम चुनावका लाभ भी प्रदान करेगा, क्योंकि इस रीतिसे मानव-जातिका पतित अंश शेष जाति पर अपने दुर्गुणोंका प्रभाव न डाल सकेगा।"

खेद है कि मनुष्य ऐसी बातें पढ़ते हैं, दूसरोंको पढ़ाते हैं और उसे विज्ञानके नामसे पुकारते हैं। लेकिन किसीके दिमागमें यह प्रश्न नहीं उठता कि यह मान लेने पर भी कि बुरे आदमियोंको मार डालना अच्छा है, अच्छे और बुरेका निर्णय कौन करेगा? उदाहरणके लिए मान लीजिए मैं समझता हूँ कि मि० हैकलसे ज्यादा बुरा और ज्यादा हानिकारक आदमी संसारमें दूसरा नहीं है। लेकिन क्या इसका मतलब यह है कि मैं अथवा मेरे जैसे विचार रखनेवाले और आदमी मि० हैकलको फांसीकी सजा दे दें? नहीं वह जितनी ही बड़ी-बड़ी भूलें करेंगे उतना ही मैं चाहूँगा कि वह अधिक विवेकी और युक्ति-युक्त हो। किसी भी दशामें मैं उन्हें इस प्रकारका व्यक्ति बनने देनेके अवसरसे वंचित नहीं कर सकता।

चर्च और विज्ञानके मिथ्यावादने ही आज हमें उस गढ़ेमें डाल रखा है जिसमें हम हैं। युगोंसे महीने और वर्षमें एक दिन भी ऐसा नहीं जाता जिस दिन फांसियां, हत्याएं न होती हों। कुछ आदमी क्रांतिकारियोंकी अपेक्षा सरकार-द्वारा अधिक आदमी वध किये जानेपर प्रसन्न होते है। अन्य लोग बहुत-से सेनापतियों, भूमिपतियों, व्यापारियों तथा पुलिसवालोंके मारेजाने पर प्रसन्न होते हैं। एक ओर तो हत्याओंके लिए १०-१५ और २५ रूबलके इनाम दिये जाते हैं और दूसरी ओर क्रांतिकारी लोग हत्यारों और जबर्दस्ती संपत्ति छीननेवालोंका आदर और मान करते हैं और उन्हें शहीदकी पदवी देते हैं।..."उन आदमियोंसे मत डरो

जो शरीरका नाश करते हैं बल्कि उनसे डरो जो शरीर और आत्मा दोनों-का विनाश कर देते है।..."

इन सब बातोंको मैंने बादमें समझा। परंतु एक स्पष्ट-सी अनुभूति मेरे मनमें उस समय भी थी, जब मैंने इतनी मूर्खतापूर्ण और लज्जाजनक रीतिसे उस अभागे सिपाहीकी वकालत की थी। इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि मेरे जीवनपर उस घटनाका भारी प्रभाव पड़ा है।

हां, उस घटनाका मेरे जीवन पर बहुत अच्छा और लाभदायक प्रभाव पड़ा है। उसी समय मैंने पहली बार यह अनुभव किया कि हर प्रकारकी हिंसाकी पूर्तिमें हत्या या हत्याकी धमकी छिपी हुई है, इसलिए हर प्रकार-की हिंसा हत्याके साथ जुड़ी हुई है। दूसरे यह कि राज्य-शासनकी कल्पना बिना हत्याके नहीं हो सकती और इसलिए वह ईसाई धर्मके साथ मेल नहीं खाती। तीसरे यह कि जिस प्रकार पहले चर्चके उपदेशके विषयमें हुआ था, उसी प्रकार हम आज जिसे विज्ञान कहते हैं, वह वर्तमान बुराइयोंकी एक झूठी वकालतके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

अब मेरे निकट यह बात बिलकुल स्पष्ट है, परंतु उस समय तो वह उस मिथ्यावादकी, जिसके बीच मैं अपना जीवन व्यतीत कर रहा था, एक क्षीण स्वीकृत-मात्र थी।

यास्नाया पोल्याना
२४ मई, १६०८

लियो टॉल्स्टॉय